MV July 2018 final for printing:Layout 1 6/22/2018 11:33 AM Page 3

वर्ष 4, अंक 15, जुलाई-2018
आषाढ़, वि. सं. 2075, ₹ 50

मंगल विमर्श

त्रैमासिक

वादे वादे जायते तत्त्वबोधः

अंदर के पृष्ठों पर

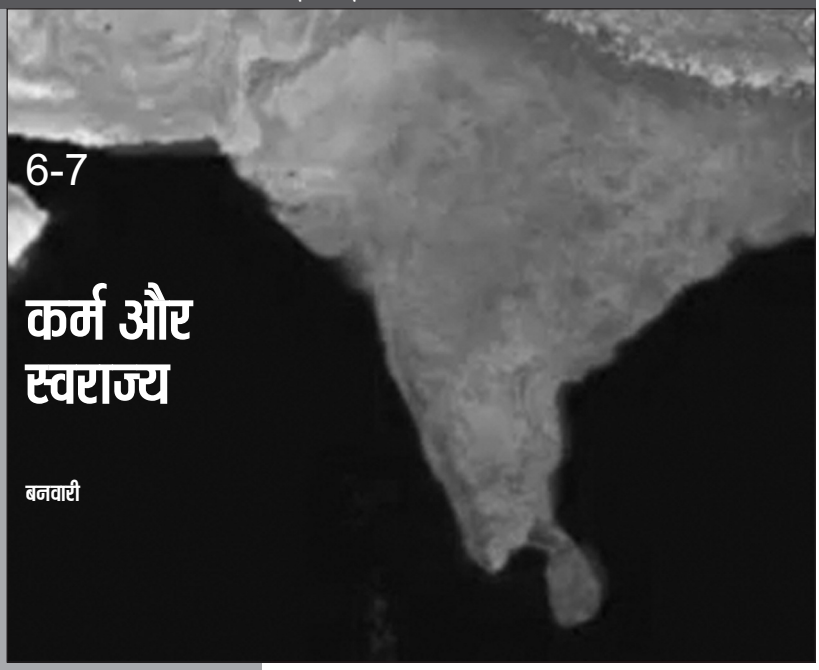

6-7
कर्म और स्वराज्य
बनवारी

8-29
भारतीय कला दृष्टि
प्रो. सुरेंद्र भटनागर

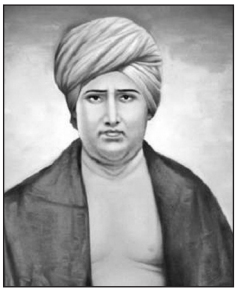

42-53
अंग्रेजों के शोषण के खिलाफ स्वराज के मंत्रद्रष्टा
डॉ. रवींद्र अग्रवाल

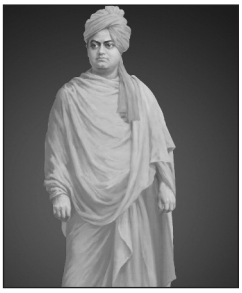

54-57
भक्तियोग : उच्चतर प्रेम का मार्ग
डॉ. चंदन कुमारी

30-33
प्राचीन भारत में श्रम
ओम प्रकाश मिश्र

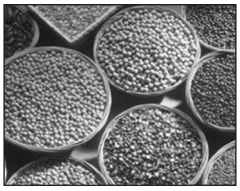

58-59
औषधि भी हैं अन्न व दाल
डॉ. ज्योत्स्ना

34-41
क्रोध का रूपांतरण
सीता राम गुप्ता

मुख्य संरक्षक
डॉ. बजरंग लाल गुप्ता

प्रधान संपादक
ओमीश परुथी

संपादक
सुनील पांडेय

संयुक्त संपादक
डॉ. रवींद्र अग्रवाल

प्रबंध संपादक
आदर्श गुप्ता

प्रकाशक एवं मुद्रक आदर्श गुप्ता द्वारा मंगल सृष्टि, सी-84, अहिंसा विहार, सेक्टर-9, रोहिणी, दिल्ली- 110085 के लिए प्रकाशित एवं एक्सेल प्रिंट, सी-36, एफ एफ कॉम्प्लेक्स, झंडेवाला, नई दिल्ली द्वारा मुद्रित।

RNI
DELHIN/2015/59919
ISSN
2394-9929
ISBN
978-81-935561-3-9

फोन नं.
+91-9811166215
+91-11-27565018
ई-मेल
mangalvimarsh@gmail.com
वेब साइट
www.mangalvimarsh.in

मंगल विमर्श पत्रिका में व्यक्त विचारों के लिए रचनाकार स्वयं उत्तरदायी हैं। संपादक, मुद्रक व प्रकाशक का उनसे सहमत होना अनिवार्य नहीं है।

सभी विवादों का न्याय क्षेत्र केवल दिल्ली होगा।

MV July 2018 final for printing:Layout 1 6/22/2018 11:33 AM Page 4

अथ

यह एक भयावह विडंबना है कि पिछले तीन दशकों से हमारे किसान लगातार आत्महत्याएँ कर रहे हैं और हम मूक दर्शक के समान अविकल भाव से उन्हें देख रहे हैं। इस दीर्घ अवधि में सरकारें बदलीं, निज़ाम बदला, नेतृत्व बदला, योजना आयोग नीति आयोग में बदल गया, लेकिन नहीं बदला, तो किसान का भाग्य। कृषि-विशेषज्ञों की चिंतना, समाजशास्त्रियों की मंत्रणा व नामचीन अर्थशास्त्रियों का मंथन भी किसी काम नहीं आया। अन्नदाता की आत्महंता में परिणति निरंतर जारी है। यह भारत की अन्य समस्याओं की भाँति मात्र एक समस्या नहीं, बल्कि हमारे राष्ट्रीय जीवन की महात्रासदी है; भारतमाता के आँचल पर लगा बदनुमा दाग है।

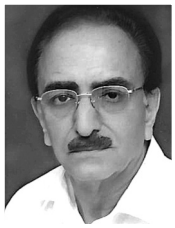

ओमीश परुथी
एसोसिएट प्रोफेसर (से.नि.)
प्रधान संपादक

सन् 1990 में 'द हिंदू' अखबार के माध्यम से महाराष्ट्र के कपास की खेती करने वाले किसानों द्वारा नियमित आत्महत्याएँ करने का रहस्योद्घाटन हुआ। बाद में यह महामारी केरल, कर्नाटक, आंध्रप्रदेश, तमिलनाडु, छत्तीसगढ़ व पंजाब आदि राज्यों में भी फैल गई। सन् 1995 से अब तक औसतन दस हजार किसान प्रतिवर्ष आत्महत्याएँ कर रहे हैं। इस दृष्टि से 2004 का वर्ष अत्यधिक त्रासद था, जब एक साल में 18241 किसानों ने खुदकुशी कर ली। अब तक तीन लाख से अधिक किसान मौत को गले लगा चुके हैं।

भारत में किसानों की दशा अक्सर शोचनीय रही है। वे पीढ़ी दर पीढ़ी ऋणग्रस्त रहे हैं। भारतीय जनमानस में 'गोदान' का होरी दरिद्र किसान के ज्वलंत प्रतीक के रूप में गहराई से खचित है। किसानों की नियमित आत्महत्याओं के विषय में जानकर सहज ही अनुमान लगा लिया जाता है कि ये फसल के बर्बाद होने एवं कर्ज के भारी बोझ से दबने के कारण हुई होंगी। इस अनुमान को झुठलाया भी नहीं जा सकता, लेकिन इतिहास में कौन-सा समय ऐसा रहा है जब किसान की दशा दयनीय नहीं थी, संभवतः हरितक्रांति के एकाध दशक को छोड़कर। फिर पिछले तीस वर्षों से इतनी आत्महत्याएँ क्यों होने लगीं। इसका प्रमुख कारण है इधर फसलों की लागत में असाधारण वृद्धि। जैनेटिक मोडिफाइड बीज व उनके कीटनाशक अत्यधिक महँगे हैं। डीजल के भाव भी आकाश छू रहे हैं। इतना खर्च करके भी किसान को अपनी फसल का जो न्यूनतम समर्थन मूल्य मिलता है, वह लागत के अनुपात में बहुत कम है। किसान की आमदनी औसत राष्ट्रीय आमदनी से आधी है। उसका व्यवसाय सर्वाधिक जोखिम भरा है। वह खुले खेत में बीजों के साथ-साथ अपने परिवार के सपने भी बोता है। पानी के साथ-साथ, अपने श्रमसीकरों से सिंचाई करता है और फिर आस लगाए आकाश ताकता रहता है। राम जी बरस जाएँ, तो अच्छा!

प्रसिद्ध कृषि व खाद्यान्न विशेषज्ञ देवेंद्र शर्मा ने इस समस्या का विश्लेषण करते हुए लिखा है कि 1970 से 2015 तक सरकारी कर्मचारियों के वेतन में 120 गुना की वृद्धि हुई, जबकि किसान के लिए गेहूँ का समर्थन

MV July 2018 final for printing:Layout 1 6/22/2018 11:33 AM Page 5

मूल्य केवल 20 गुना बढ़ा। छोटी जोत वाले किसान की आमदनी एक सरकारी सफाई कर्मचारी से भी कम है। सूखे अथवा बाढ़ की स्थिति में उसकी हालत अत्यंत दयनीय हो जाती है। वह पहले ही कर्जदार होता है, इन आपदाओं के आने पर वह अवसाद से घिर जाता है। इस स्थिति में कोई उसका मनोबल बढ़ाने वाला भी नहीं होता। अन्य किसान भी हताश होते हैं। मनोचिकित्सक की उपलब्धता अभी ग्राम स्तर पर है नहीं, जो उसे समझाकर निराशा के दुष्चक्र से बाहर निकाल सके। इसके ऊपर बैंकों के तकाजे पर तकाजे तथा साहूकार का सूद दर सूद उसका जीना दूभर कर देता है। तंग आकर वह खुदकुशी करने को मजबूर हो जाता है। कीटनाशकों की सुलभता उत्प्रेरक का काम करती है। समाजशास्त्रियों का यह भी अवलोकन है कि सवर्ण कृषक ऐसी परिस्थिति में भी मजदूरी करने में संकोच करते हैं, मानहानि की भावना के कारण। यह बड़ी पैराडाक्सिकल स्थिति है।

पिछली सरकार ने किसानों को राहत पहुँचाने के लिए 110 अरब रुपये की राशि देकर उनके कर्जे चुकाए थे। बाद में मौजूदा सरकार ने भी उत्तर प्रदेश के किसानों को ऋणमुक्ति दिलवाई। लेकिन देखा गया है कि इस प्रकार के अनुदानों से कोई स्थायी समाधान नहीं निकलता। प्रतिष्ठित कृषि अर्थशास्त्री अशोक गुलाटी जो वर्तमान केन्द्र सरकार में 'लागत खरीद मूल्य आयोग'के अध्यक्ष भी रहे हैं, का मानना है ऋणमाफी इस समस्या का हल नहीं है। इसके लिए भारत में कृषि व्यवस्था में संरचनात्मक परिवर्तनों की जरूरत है। इसके अतिरिक्त विशेषज्ञों का मानना है कि अब न्यूनतम समर्थन मूल्य की अपेक्षा न्यूनतम आमदनी की योजना लानी चाहिए, जो अधिक प्रभावकारी होगी।

वर्तमान केंद्र सरकार एवं पिछली सरकार, दोनों ने ही इस विकराल समस्या को गंभीरता से नहीं लिया। कुछ न करते हुए भी वे किसानों की हितैषी दिखना चाहती रहीं। परिणामतः स्वामीनाथन आयोग गठित किया गया, लेकिन जिसकी सिफारशों को अबतक लागू नहीं किया गया। आयोग की सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण सिफारिश फसल के समर्थन मूल्य को 50 प्रतिशत बढ़ाना है, जिसके विषय में सत्ता में आने से पहल मोदी जी ने भी वादे किए थे, लेकिन अब सर्वोच्च-न्यायालय के समक्ष उसे लागू करने में असमर्थता जता दी है।

दरअसल हमारा नेतृत्व वर्ल्ड बैंक,हार्वर्ड शिक्षित अर्थशास्त्रियों तथा अमेरिकी रोल मॉडल के इतने प्रभाव में आ चुका है कि कृषि क्षेत्र की उपेक्षाकर उद्योगपतियों को लाभांवित कर रहा है। पाश्चात्य पूंजीपति भी यही चाहते हैं कि खेती से ऊबकर किसान शहरों की ओर पलायन करें, जिससे उन्हें निर्माण व अन्य क्षेत्रों के लिए सस्ते मजदूर मिल सकें। पंजाब विश्वविद्यालय के एक सर्वेक्षणानुसार पंजाब में प्रतिमाह ढ़ाई हजार किसान गाँव छोड़ रहे हैं। पिछले 3 दशकों में भारत में 70 लाख से अधिक किसान गाँव से पलायन कर चुके हैं। वर्तमान सरकार के द्वारा लाई गई 'फसल बीमा योजना' यों तो उपादेय है, लेकिन अभी 20 प्रतिशत किसान ही इससे लाभांवित हो पाए हैं। 'एसोचेम' के सर्वेक्षणानुसार 20 प्रतिशत किसान इस योजना के विषय में अनभिज्ञ हैं और बाकी इसे अपनाने में झिझक रहे हैं। उन्हें इसका फायदा उठाने के लिए प्रोत्साहित किया जाना चाहिए।

अंत में कहा जा सकता है कि सरकार को कृषि क्षेत्र एवं उद्योग क्षेत्र के बीच में एक सार्थक संतुलन बनाना चाहिए। 'न्यूनतम समर्थन मूल्य' को निर्धारित करते समय केवल उपभोक्ताओं के हितों को ही नहीं साधना चाहिए, किसानों का भी ध्यान रखना चाहिए। सिंचाई की जो परियोजनाएँ शुरू की गई हैं, उन्हें शीघ्रातिशीघ्र कुशलतापूर्वक संपन्न करवाना चाहिए। किसानों को भी चाहिए कि मानसिक संतुलन न खोकर, जीवट व साहस से इस समस्या का सामना करें।

•

MV July 2018 final for printing:Layout 1 6/22/2018 11:33 AM Page 6

बनवारी

कर्म और स्वराज्य

भारत की एक आत्म छवि है, जो उसे संसार की अन्य जातियों से अलग करती है। हम सुदीर्घकाल से यह मानते रहे हैं कि भारत भूमि कर्मभूमि है। भारत के बाहर की सभी भूमियाँ भोग भूमियाँ हैं। भारत के लोगों का जीवन कर्म प्रधान है। कर्म का अर्थ है विवेकपूर्वक किया गया कार्य। उचित अनुचित का विचार करते हुए उचित मानकर जो कार्य किया जाता है, वही कर्म है। इस तरह किया गया कर्म पुण्य का निर्माण करता है। वही हमारी उन्नति का कारक होता है।

हम यह मानते हैं कि हम सब कर्म फल के एक उच्च विधान से बँधे हैं। इस विधान के अनुसार सभी कर्म अनिवार्य रूप से फलित होते हैं। यह दोनों एक अटल कार्य-कारण संबंध में बँधे हैं। साधारण कर्म अपूर्व में परिवर्तित हो जाते हैं और वही सुख-दुःख के रूप में फलित होते रहते हैं। वही हमारे जन्म-मरण का कारक है। अपने संचित कर्म का भोग करने के लिए ही हमें बार-बार जन्म लेना पड़ता है। जन्म-मरण के चक्र में पड़े रहना दुःखकारक है, इसलिए इस चक्र से निवृत्ति ही हमारा परम लक्ष्य माना गया है। सत्कर्मों को करते हुए हमारी धर्मबुद्धि जाग्रत होती है और हम काम्य कर्मों से उपरत होते हैं। निषिद्ध और काम्य कर्मों को छोड़कर नित्य और नैमित्तिक कर्म करने से हम कर्म के बंधन से मुक्त हो जाते हैं और निःश्रेयस को प्राप्त होते हैं। निःश्रेयस ही हमारा परम पुरुषार्थ है।

प्रश्न उठता है कि वे कर्म कौन से हैं, जो निःश्रेयस की ओर ले जाते हैं? ऐसे कर्म वे हैं, जो इस निश्चय के साथ किए जाते हैं कि इस परिस्थिति में यह मेरा धर्म है, इसलिए मैं इसे करता हूँ। किया

MV July 2018 final for printing:Layout 1 6/22/2018 11:33 AM Page 7

गया कर्म महत्त्वपूर्ण नहीं है। महत्त्वपूर्ण यह है कि वह किस निश्चय से किया गया है। लेकिन किसी परिस्थिति में हमारा धर्म क्या है, यह कैसे निश्चय हो? पहली बात तो यह कि हर परिस्थिति में एक ही धर्म होता है, उसका ठीक-ठीक ज्ञान केवल शुद्ध अंतःकरण से ही किया जा सकता है। लेकिन शुद्ध अंतःकरण वाले लोग विरल हैं। वह कौन से साधन हैं, जिनके द्वारा धर्म बुद्धि का निर्माण किया जा सकता है? वेद और स्मृतियों के आदेश, ऋषियों और गुणी जनों के वचन और लोक में स्वीकृत मान्यताएँ धर्म-बुद्धि के निर्माण में सहायक होती हैं। पर अंततः इसका निश्चय स्वविवेक से ही करना होता है कि किसी परिस्थिति में धर्म क्या है? सत्कर्म क्या है?

यहाँ शास्त्र की यह मान्यता उल्लेखनीय है कि धर्म देशकाल सापेक्ष है। इसलिए किसी परिस्थिति विशेष में हमारा धर्म क्या है, हमारा कर्तव्य क्या है, इसका निर्धारण स्वविवेक से ही हो सकता है। अन्य सब साधन दीपक की तरह हमारा मार्गदर्शन ही कर सकते हैं। किसी बाहरी साधन से हम अपने कर्तव्य का निश्चय नहीं कर सकते। इसका निश्चय हमें अपने अंतःविवेक से ही करना होता है। यही हमारी स्वतंत्रता है। स्वतंत्रता का अर्थ वह नहीं है जिसे अंग्रेजी में फ्रीडम कहा जाता है। स्वतंत्रता का अर्थ है अपने विवेक पर आश्रित रहना, स्व के तंत्र में रहना। क्योंकि संसार में केवल भारत भूमि ही कर्मभूमि है, इसलिए संसार में केवल भारतीय ही स्वतंत्र हैं। अन्य सभी समाजों में कर्तव्य का निर्धारण किसी बाहरी तंत्र पर निर्भर है। वह राजाज्ञा हो या किसी मसीहा के माध्यम से प्राप्त ईश्वरीय संदेश। इसलिए ऐसे सब लोग पराधीन ही हैं।

स्वतंत्र व्यक्ति ही स्वराज्य के अधिकारी होते हैं। स्वराज्य का अर्थ है, ऐसी व्यवस्था, जिसमें विधि का निर्माण स्वविवेक पर निर्भर हो। मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। उसके कार्यों का संबंध अन्य प्राणियों से होता है। इसलिए समाज में स्व का विस्तार उस इकाई में हो जाता है, जिसके भीतर के सभी लोगों के कर्म किसी रूप में एक-दूसरे से संबंधित हों। यह इकाई परिवार हो सकती है, कुल हो सकती है, व्यावसायिक हो सकती है, भौगोलिक हो सकती है। जहाँ विधि का निर्धारण ऐसी सब इकाइयों के विवेक पर आश्रित हो, वहाँ ही स्वराज्य होता है। लेकिन स्वराज्य की एक बड़ी मर्यादा यह है कि विधि का निर्माण सर्वानुमति से हुआ हो। सर्वानुमति के लिए सर्वसम्मति आवश्यक है और

स्वतंत्रता का अर्थ वह नहीं है जिसे अंग्रेजी में फ्रीडम कहा जाता है। स्वतंत्रता का अर्थ है अपने विवेक पर आश्रित रहना, स्व के तंत्र में रहना। क्योंकि संसार में केवल भारत भूमि ही कर्मभूमि है, इसलिए संसार में केवल भारतीय ही स्वतंत्र हैं। अन्य सभी समाजों में कर्तव्य का निर्धारण किसी बाहरी तंत्र पर निर्भर है। वह राजाज्ञा हो या किसी मसीहा के माध्यम से प्राप्त ईश्वरीय संदेश। इसलिए ऐसे सब लोग पराधीन ही हैं। स्वतंत्र व्यक्ति ही स्वराज्य के अधिकारी होते हैं। स्वराज्य का अर्थ है, ऐसी व्यवस्था, जिसमें विधि का निर्माण स्वविवेक पर निर्भर हो।

सर्वसम्मति की प्रक्रिया राग-द्वेष से ऊपर उठकर न्याय और परमार्थ की बुद्धि से निश्चय करने के लिए प्रेरित करती है। इस तरह हुआ विधि का निर्माण ही स्वराज्य में सहायक होता है। इसलिए स्वराज्य को ही हमारे यहाँ सबसे उत्तम प्रणाली माना गया है। संसार में जैसे भारत भूमि ही कर्मभूमि है, वैसे ही स्वतंत्र भारतीय सदा स्वराज्य में ही स्थित रहते हैं।

लेखक चिंतक व वरिष्ठ पत्रकार हैं।

MV July 2018 final for printing:Layout 1 6/22/2018 11:33 AM Page 8

मैं मन हूँ
और जहाँ तक मन हूँ, उतनी ही सीमा तक जीवन हूँ
और मन कभी मरता नहीं है
इसलिए मैं बार-बार आऊँगा, इस दीये को अमर रखने
छूटे मनों से मिलने, टूटे मनों से बात करने, उनके दुख-दर्द पूछने
बीती बातों को भूलने और रूठे मनों को मनाने
पुराने किस्सों को झुठलाने, उन्हें नए काव्य से जोड़ने
डालने एक बेहतर दुनिया की बुनियाद
कला तो मात्र साधन है
पश्य देवस्य काव्यः न ममार न जीर्यति।

कला को देखना, परखना उसका आस्वादन करना जितना सहज है, उसको परिभाषित करना, उसके विभिन्न प्रत्ययों का विश्लेषण करना उतना ही कठिन। भारतीय व विदेशी विद्वानों, कलाकारों व दार्शनिकों ने उसे अपने-अपने ढ़ंग से समझा व व्यक्त किया है। यथा हीडगर ने उसे सत्य को अनावृत करने की प्रक्रिया कहा है, तो कांट ने उसे प्राकृतिक सौष्ठव की अभिव्यंजना माना है। क्रोचे तो उसे इतना सूक्ष्म मानते हैं जो अंतस में ही प्रस्फुटित होती है बाह्य रूप तो केवल स्मृति-सहायक हैं। हमारे यहाँ इसे समग्र रूप से देखा गया है। कबीर, रवींद्र ने सत्य, शिव व सौंदर्य को कला के प्रत्यय माना है। कला से केवल सौंदर्य-बोध ही न हो, कल्याणकारी, सार्थक संदेश भी व्यक्त हो। वो जीवन को भी समुन्नत करे। प्रो. सुरेंद्र भटनागर यशस्वी शिक्षाविद् व उद्भट चिंतक हैं। प्रस्तुत है उनका श्रमसाध्य गवेषणापूर्ण आलेख–

MV July 2018 final for printing:Layout 1 6/22/2018 11:33 AM Page 9

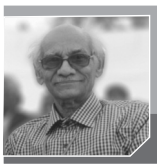

प्रो. सुरेंद्र भटनागर

भारतीय कला दृष्टि

कला की परिभाषा, मात्र एक सौंदर्य के प्रत्यय से नहीं की जा सकती। प्लेटो से लेकर संत थामस एक्विनास, कवि रवींद्रनाथ ठाकुर एवं श्री अरविंद तक कला को किसी न किसी प्रकार आध्यात्मिक उद्देश्यों का सहायक माना जाता रहा। प्रसिद्ध दार्शनिक हीडगर कला को सत्य का अनावरण या सर्जन- *द वर्क ऑफ ट्रूथ* मानता है। किंतु हाईडगर, कला में जिस सत्य की स्थापना की बात करता है वह आत्मिक न हो कर आनुभविक है। परिघटना है। अक्षर न होकर क्षर है।

हीगल और क्रोचे कला में सर्जित सौंदर्य को प्राकृतिक सौंदर्य से वरीय मानते हैं। कान्ट प्राकृतिक सौंदर्य को वरीयता देते हैं। वे सौंदर्य और अर्थबोध कला के दो अलग प्रत्यय मानते हैं। सौंदर्यशास्त्री वामगार्टन अनुकरण को कला का धर्म मानता है। वह कला के उपादानों को बौद्धिक नहीं मानता। कलाकार अपनी कला के लिए मॉडल्स का चुनाव प्रकृति से करता है। इतिहास के समान कला एक सामाजिक प्रत्यय भी है। मार्क्सवादी सौंदर्यशास्त्री भी जीवन की वास्तविकताओं के- *ट्रू टू लाइफ* - या पुनर्सर्जन को कला का लक्ष्य मानते हैं (अवनेर जिस 1977)।

इन सब एकपक्षीय परिभाषाओं से अलग रवींद्रनाथ ठाकुर कला के तीन प्रत्यय सत्य, शिव और सौंदर्य मानते हैं। इनमें ऊपर दर्शाए सभी तत्त्वों का समन्वय है।

सत्य। शिव । सुन्दर।

सौंदर्य की वस्तु या रूप के बिना कोई स्वतंत्र

MV July 2018 final for printing:Layout 1 6/22/2018 11:33 AM Page 10

सत्ता नहीं हो सकती है पर कला केवल आकार या रूप रचना नहीं होती, क्योकि रूप कुरूप भी हो सकता है। इसी प्रकार अर्थहीन कला निरर्थक ही कही जाएगी। कला का अर्थ ही उसका शिवत्व है। कला भी कविता के समान रूपशक्ति है। कवि कला में इसी रूपशक्ति का आह्वान करता है। उसके अवतरण की कामना करता है। कोई भी रूप स्थायी नहीं होता। गतिशील समय में रूप बदलता रहता है। कला भी नए-नए रूप धरती रहती है पर उससे कला की मौलिक परिभाषा नहीं बदलती । उसके उद्देश्य नहीं बदलते।

सौंदर्य की वस्तु या रूप के बिना कोई स्वतंत्र सत्ता नहीं हो सकती है पर कला केवल आकार या रूप रचना नहीं होती, क्योकि रूप कुरूप भी हो सकता है। इसी प्रकार अर्थहीन कला निरर्थक ही कही जाएगी। कला का अर्थ ही उसका शिवत्व है। कला भी कविता के समान रूपशक्ति है। कवि कला में इसी रूपशक्ति का आह्वान करता है।

नीचे कला की कई परिभाषाएँ दी जा रहीं हैं–

- कला अभिव्यक्ति है।
- कला सौंदर्यात्मक अभिव्यक्ति है।
- कला आत्मा की सौंदर्यात्मक अभिव्यक्ति है।
- कला मानव मन की सौंदर्यात्मक अभिव्यक्ति है।
- कला मानव मन की सौंदर्यात्मकअर्थपूर्ण अभिव्यक्ति है।
- कला जाग्रत् मन की अर्थपूर्ण सौंदर्यात्मक अभिव्यक्ति है।

इन सभी परिभाषाओं में अंतिम परिभाषा पूर्ण है। इसमें सत्य, शिव और सुंदर कला के तीनों प्रत्यय सम्मिलित हैं।

विद्यानिवास मिश्र (2001-2002) इसके आगे कहते हैं कि कला में केवल संप्रेषण का गुण पर्याप्त नहीं है, उसे अपने पाठक से तादाम्य भी स्थापित करना चाहिए। इसके अतिरिक्त वे कला को प्रतिभा (क्रिएटिव इंट्यूशन) का परिणाम मानते हैं।

कला मानव मन की सौंदर्यात्मक अर्थपूर्ण अभिव्यक्ति है। प्लेटो इसे आत्माभिव्यक्ति कहते हैं। चूंकि आत्मा का अनिर्वचनीय होने से उसका कथन नहीं किया जा सकता है, इसीलिए वर्तमान संदर्भ में हम उसके स्थान पर मानव मन प्रत्यय का प्रयोग कर सकते हैं। आगे इस रूप में ही हम इस परिभाषा पर विचार करेंगे। इस परिभाषा में कला, सौंदर्यात्मक-अनुभव, अर्थ, अभिव्यक्ति और मानव मन यह पाँच बीज-विचार हैं। पहले कला पर विचार करें। कला का एक अर्थ अंश है। यह अंश, कलाकार का सत्य और सौंदर्य का अपना दृष्टिफलक है। उसका अपना अनुभव जगत् है।

कला खाली आकाश में प्रकाश के लिए
जमीन तैयार करना है।
सात रंगों की परिधि के बाहर
उस भूमि की तलाश है
जहाँ रौशनियाँ अपने सत्य को
सौंदर्य के नए शिवरूपों में जन्म देती हैं
इसके लिए कुँआरी षोडशी कला
कालरात्रि के गर्भ में
प्रवेश करती है।
अपना नया रंगरूप धरती है।

भारतीय कला सत्य का सौंदर्यात्मक और शिवात्मक रूपांतरण है।

कला और कारीगरी

आनंदकुमार स्वामी का कहना है कि सौंदर्य के एहसास के लिए इंद्रियाँ एवं बुद्धि केवल एक माध्यम है। प्रसिद्ध भौतिकीविद् वैज्ञानिक सुब्रह्मण्यम चंद्रशेखर कहते हैं कि विज्ञान भी कला के समान सत्य और सौंदर्य

MV July 2018 final for printing:Layout 1 6/22/2018 11:33 AM Page 11

खोज की विधि है। वह भी आकाश (स्पेस) में रचनारूपों (पैटर्न्स) की खोज करता है।

कला को यदि सम्मिति, समानुपात और संतुलन इत्यादि ज्यामितीय परखों से ही पहचानी जानी है तो कला और कारीगरी में कोई अंतर नहीं दिखाया जा सकता है। इसी मान के आधार पर फिर कार्पेट और पेंटिग में फर्क करना भी असंभव हो जाएगा। कार्पेट भी पेंटिग के ही समान सुंदर होती है। उसमें भी सम्मिति, संगति, समानुपात और संतुलन जैसे गुण होते हैं पर ऊपर दिखाए गुणों की समानता के बावजूद यदि हम कार्पेट और पेंटिग में अंतर पाते हैं तो इसका कारण कार्पेट का ड़िजायन होना है। कार्पेट एक ज्यामितीय यांत्रिक रचना है, उसमें मनस्तत्व नहीं है। यही बात डाँस और ड्रिल के संबंध में कही जा सकती है। नियम किसी प्रकार के भी हों, वे बाँधते हैं। ड्रिल भी डिजायन के समान पूरी तरह गणितीय और यांत्रिक है। यांत्रिक विश्व पूर्णतः दासत्व है। एक तंत्र में यदि घटनाओं अथवा इकाइयों की स्वतंत्र अभिव्यक्ति है, तो यह आत्मा का लक्षण है। अवज्ञा आत्मा का अपनी स्वतंत्रता के लिए प्रतिरोध है। किसी भी यंत्र अथवा तंत्र (सिस्टम) में प्रतिरोध क्षमता नहीं होती। पशुओं के रोग प्रतिरोधक तंत्र भी पूरी तरह जीन्स के नियंत्रण में होता है। संपूर्ण सर्जित विश्व नियम-पाशों से बँधा है।

मनस्तत्व

खुले आकाश में, अपनी आत्मा के प्रकाश में,
रोज एक अपने सूरज की खोज
मन की थकानों के अवरोह और उमंग भरी उडानों के आरोह
मुक्त आकाश के पक्षी
लिखते नहीं लिखी हुई लकीरों पर
अपनी आत्मा का अर्चित काव्य
मन ही ज्योतिष है। मनो ज्योतिः।

वनस्पतियों में मन नहीं *चित्त* होता है। इसलिए उनमें नियमों की कारा को तोड़कर किसी भी नए विकल्प की संभावना नहीं है। यही बात बहुत कुछ पशुओं में है। पशुजीवन पूरी तरह यांत्रिक है। पशु भी जैविक प्रतिबंधों का उल्लंघन नहीं कर सकते। प्राकृतिक नियमों में फेर बदल करने की क्षमता केवल मनुष्य में है। इसीलिए मोक्ष की संभावना भी केवल मनुष्य में है। मोक्ष का अर्थ सदैव ईश्वर प्रत्यय के सहारे संसार के पाशों से छुटकारा पाना ही नहीं है। जैन दर्शन ईश्वर प्रत्यय को नहीं मानता पर इससे उनके मोक्ष का रास्ता बंद नहीं होता। ऊ-कार की रचना के तीन चंद्रमा, देश और काल में बँधे हुए, शरीर,

कला का संबंध कलन, कल्पना, कलयन इत्यादि अनेक शब्दों से है। इनके अतिरिक्त कला काल की रचनाशक्ति है। भारतीय कला केवल ज्यामिती ही नहीं उसके साथ ही वह ज्योतिष भी है। इसीलिए भारत में कला का लक्ष्य मोक्ष साधन माना है।

प्राण और मन के त्रिलोक हैं। चौथा चंद्रमा महाकाल है। यह देश काल से स्वतंत्र सत्ता है। मोक्ष पद है। कला की दृष्टि से यह सोलहवीं कला है। वेदांत परमसत्ता के रूप में ईश्वर की नहीं, परमेश्वर की कल्पना करता है।

तंत्र में कला का बीजाक्षर क्लीम् है। कला का संबंध कलन, कल्पना, कलयन इत्यादि अनेक शब्दों से है। इनके अतिरिक्त कला काल की रचनाशक्ति है। इसलिए 'उत्तरसाम' नामक अपने आलेख में मैंने लिखा था कि भारतीय कला केवल ज्यामिती ही नहीं उसके साथ ही वह ज्योतिष भी है। इसीलिए भारत में कला का लक्ष्य मोक्ष साधन माना है।

जाग्रत् जीवन

अन्य कलाओं में नृत्य में भी पेंटिग के समान मनस्तत्व है। उसमें एक भाषा है, वाक्तत्त्व है और अर्थ भी। सभी मोर पक्षी रंग-रूप-रचना में एक से होते हैं, पर

MV July 2018 final for printing:Layout 1 6/22/2018 11:33 AM Page 12

मोरनी रंग और रूप के आधार पर ही नहीं उसकी नृत्यभाषा के आधार पर ही नर की ओर आकर्षित होती है। मादा बया पक्षी भी नर बया का चुनाव केवल गृह निर्माण कौशल के आधार पर नहीं करती। वह नर को भी देखती है। शव की उपमा लें। शव भी आकृति और रूपरचना में जीवित प्राणी के समान ही होता है पर उसमें जीवन और मन के तत्त्व नहीं होते। कला में प्रयोग की अपनी जगह है। रचना का अंतर, परंपरा का विकास है; अन्यथा परंपरा काठ हो जाती है। उस पर जड़ता हावी हो जाती है।

कला जीवन का लक्षण है। जीवन में तरलता होती है। उसमें गति, विकास, वृद्धि और परिवर्तन के लक्षण

भारतीय संदर्भ में कला जागे हुए आंदोलित मन की रसवृत्ति है और जागना सदा वर्तमान में ही संभव है। जागरण स्फुरण है। जागरण वस्तुबोध है। सुंदरता और शिवत्व का बोध भी जागरण के बाद ही संभव है। कविता जागरण की कला है।

होते हैं। हम कह सकते हैं कि कला जीवित मनुष्य की सौंदर्यात्मक अभिव्यक्ति है। पर यह परिभाषा भी पूरी तरह सही नहीं है क्योंकि जीवित मनुष्य सोया हुआ हो सकता है। सोये मनुष्य को भूत या वर्तमान किसी काल की कोई स्मृति नहीं होती और ऐसा मनुष्य कोई कलात्मक अभिव्यक्ति नहीं कर सकता। जीवित आदमी पुरानी स्मृतियों के सहारे स्वप्नों में भी जी सकता है। स्वप्नजीवी लोग भूतकाल की स्मृतियों से प्रेरणा ही नहीं लेते वे कला में भूतकाल की पुनर्रचना कर उसके वर्तमान में लौटाने का असंभव प्रयत्न करते हैं। यह काल की गति को पीछे लौटाने का प्रयत्न है। भूतजीवी सपनों से किसी सार्थक परंपरा का निर्माण नहीं कर सकता। परंपरा के लिए तो निरंतर नए बिंदु चाहिएँ जो लीक को सार्थक कलारूपों के द्वारा आगे बढ़ा सकें। भारतीय संदर्भ में कला जागे हुए आंदोलित मन की रसवृत्ति है और जागना सदा वर्तमान में ही संभव है।

जागरण स्फुरण है। जागरण वस्तुबोध है। सुंदरता और शिवत्व का बोध भी जागरण के बाद ही संभव है। कविता जागरण की कला है।

जगने के बाद जगाए। भोर के गीत गाए। सामान को सजाए। घर को बुहारे। बच्चों को दुलारे। सुर कंठ में धरे। ताल पर थिरके। देवता जगाए। या मंदिर में दीप जलाए। फिर जो दिख पड़े। देवता, मानव या दानव लिखे। मैंने तो आज तक नहीं सुना कि किसी ने बिना जागे कोई अक्षर लिखा। तो तुम ही बिना जागे कविता कैसे लिखोगे?

सोऽयमात्मा चतुष्पात्

मांडूक्य उपनिषद् इस संदर्भ में महत्त्वपूर्ण है। वह एक और समग्र पुरुष के रूप में सत्ता की अद्वैत प्रकृति को स्वीकार करता है और जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति और तुरीय के रूप में उसकी चार अवस्थाओं का वर्णन करता है। चतुर्थ अवस्था का वर्णन यह *शांतं शिवद्वैतम्* के रूप में करता है। उसके अनुसार तुरीय सर्वदृक् और सदा है (मा.1.12)। कला का क्षेत्र पदार्थ, प्राण और मन का त्रिलोक ही है जिसकी उत्पत्ति तुरीयावस्था से होती है। इस सिद्धांत के अनुसार सत्ता का नाश नहीं होता केवल उसके गुण रूपों में परिवर्तन होता है। गीता के अनुसार गुणों का गुणों में वर्तन होता है। पदार्थ ऊर्जा में बदल जाता है और ऊर्जा प्राण में, मन में। वह कूर्म के रूप में सुप्त अवस्था में अपनी शक्तियों को जिनमें चेतना सम्मिलित है, समेट लेता है और जाग्रत अवस्था में उनका प्रसार करता है।

वेदांत के अद्वैत सिद्धांत के अनुसार एक ही सत्ता का अलौकिक और लौकिक रूप में पृथक विभाजन गलत है। अद्वैत का अर्थ ही दो नहीं, है। प्रकृति और पुरुष एक ही सत्ता के दो रूप हैं। सत्ता एक है। सृष्टि, प्रकृति की

MV July 2018 final for printing:Layout 1 6/22/2018 11:33 AM Page 13

गतिशील और सक्रिय अवस्था है। स्वयं प्रकृति भी सांख्य में गुणों की साम्यावस्था है। अगर इस सत्ता को पुरुष कहें तो यह उसका असत् रूप है। सृष्टि, पुरुष का व्यक्त रूप या सत् भाव है। वेद में कभी इस सत्ता को पुरुष नाम से कहा गया तो कभी वाक् नाम से। वैसे स्वयं सत्ता शब्द स्त्रीलिंग है। इस सिद्धांत के अनुसार पदार्थ सोई ऊर्जा और मन का नाम है और मन या चेतना, जागा हुआ पदार्थ है। रूप के परिवर्तन से सत्ता का स्वभाव बदलता है। सत्ता अपने अद्वैत भाव में बनी रहती है। जागा हुआ मन कला को काल से संबद्ध करता है। समय से असंबद्ध कला काल का प्रतिनिधित्व नहीं करती है।

पश्चिमी सोच अलौकिक और लौकिक के बीच द्वैत पर आधारित है। वह दोनों को पूर्ण पृथक सत्ताएँ मानता है। रोजनर पेनरोज अपनी पुस्तक *'द एंपरर्स न्यू माइंड'* में *'वाट आर माइंडस फॉर'* नामक अध्याय में लिखता है कि यह कैसे हो सकता है कि चेतना केवल इच्छा मात्र से भौतिक पदार्थों की क्रिया प्रभावित कर सकती है। वह आगे लिखता है कि ऐसा लगता है कि हमारे मन में अवश्य ही कोई पराभौतिक तत्त्व है जो भौतिक जगत् से प्रभावित होता है और उसको प्रभावित कर सकता है। वह लक्षणों के आधार पर चेतना के जिन कार्यों को सरिणीबद्ध करता है उनमें कला का आस्वाद और अनुशीलन एक महत्त्वपूर्ण लक्षण है। यह आस्वाद सत्ता के सृष्टि से सभी स्तरों पर संपर्क और निरंतरता के सिद्धांत की स्वीकृति के बिना संभव ही नहीं है। यही सत्ता के अद्वैत का सर्वमान्य वैदिक सोच है। पश्चिम की दार्शनिक दृष्टि के संबंध में आर्थर पीकॉक (1988) अपने ग्रंथ *'गॉड एंड न्यू बॉयलोजी'* में लिखता है कि यह जानना जरूरी है कि यूनानी दर्शन ने शरीर और आत्मा के पृथकत्व को पश्चिमी दर्शन में स्थापित कर दिया, जो मूल यहूदी दर्शन में नहीं था। यहूदी दर्शन प्राण और शरीर की अभिन्नता और एकता स्थापित करता है। यही भारत के अद्वैत दर्शन की भी मान्यता है।

प्रश्न पूछा जा सकता है कि सत्ता की चतुष्पद परिभाषा, क्या उसकी बीज एकता का खंडन नहीं करती? क्या इस परिसीमन से उसे विभाजित कर पाशविक नहीं बनाती? कला के लिए भी यही प्रश्न है। इसका उत्तर है कि कला अपने त्रिलोक (पदार्थ, प्राण और मन) की अभिव्यक्ति में पाशविक है किंतु इस चतुष्पद का चौथा आयाम जो सर्जकता से संबंधित है, वह एक स्वतंत्र पद है।

सर्जनात्मकता एक जटिल मनोवैज्ञानिक स्थिति है। इसे द्वंद्ववाद का सरल परिणाम नहीं माना जा सकता। कब, क्या हो इसे कोई नहीं जानता। इसीलिए द्वंद्वात्मक प्रक्रिया से इतिहास का मार्क्सवादी गणित गड़बड़ा गया। द्वंद्व में क्रिया के परिणाम का पूर्व अनुमान लगाया जा सकता है, पर संभावनाओं को केवल संभावनाओं के रूप में ही समझा जा सकता है।

ओंकार में उसे उकार के ऊपर के स्वतंत्र चंद्र के रूप में दर्शाया जाता है। यह कला का मह पद है। यही उसको उज्ज्वलतर और उच्चतर बनाता है। तैत्तरीय उपनिषद् इसकी व्याख्या *'मह इति चंद्रमा'* कहकर करता है। यही मौलिक सर्जन की भूमि है।

सर्जकता

सर्जकता का जन्म संभावनाओं से होता है। सदा ही क्रिया-प्रतिक्रिया के द्वंद्ववादी न्याय से नहीं। भारत के जैन दर्शन में इसके लिए सप्तभंगी न्याय है। पर संभावना को तंत्र की समूची गतियों के परिणाम के रूप में ही देखा जा सकता है। सर्जनात्मकता एक जटिल मनोवैज्ञानिक स्थिति है। इसे द्वंद्ववाद का सरल परिणाम नहीं माना जा सकता। कब, क्या हो इसे कोई नहीं जानता। इसीलिए द्वंद्वात्मक प्रक्रिया से इतिहास का

मार्क्सवादी गणित गड़बड़ा गया। द्वंद्व में क्रिया के परिणाम का पूर्व अनुमान लगाया जा सकता है, पर संभावनाओं को केवल संभावनाओं के रूप में ही समझा जा सकता है। जब हायजनबर्ग ने अनिश्चिति का सिद्धांत वैज्ञानिक जगत् में रखा तो आइंस्टीन सरीखा महान् वैज्ञानिक इसे एकाकी स्वीकार नहीं कर सका। पर आगे चलकर विज्ञान ने हायजनबर्ग के सिद्धांत को सत्य स्वीकार किया। डार्विन का विकासवाद भी संभावनाओं के बीच सर्वोत्तम या योग्यतम का चुनाव है। यही वैज्ञानिक स्थिति है। द्वंद्ववाद, परिणामवाद और नियतिवाद है, जिसकी सर्जन में कोई भूमिका नहीं।

कला कल्पना का व्यापार है। आत्मा जो स्वयं के प्रति जाग्रत है उसे देह, प्राण और मन के त्रिलोक का भान नहीं होता। इसीलिए जब वह त्रिलोक रचती है तो ऐसा वह इस अचेतन रूप से ही करती है। इसका अर्थ हुआ कि सर्जकता सचेतन रूप में संभव नही है और सर्जन का सीधा संबंध अचेतन मन की प्रवृत्तियों, गतियों और संस्कारों से है।

श्री मेहेरबाबा (2001) कहते हैं कि कल्पना का अर्थ ही सर्जन है। कल्पना के सागर की कोई सीमा नहीं है और कल्पना यथार्थ नहीं हो सकती। इसीलिए सृष्टि चाहे किसी भी रूप की हो कल्पित ही होगी। कला कल्पना का व्यापार है। वे कहते हैं आत्मा जो स्वयं के प्रति जाग्रत है उसे देह, प्राण और मन के त्रिलोक का भान नहीं होता। इसीलिए जब वह त्रिलोक रचती है तो ऐसा वह इस अचेतन रूप से ही करती है। इसका अर्थ हुआ कि सर्जकता सचेतन रूप में संभव नही है और सर्जन का सीधा संबंध अचेतन मन की प्रवृत्तियों, गतियों और संस्कारों से है। काम अचेतन मन की गति है। कामना उसका परिणाम है। इसी दर्शन की अभिव्यक्ति के लिए विष्णु को सोया हुआ दिखाया जाता है। विष्णु सृष्टि के पूर्व की मूल महाअचेतना है। सृष्टि की क्षमतामूलक धारकशक्ति है। सकाम सर्जकशक्ति नहीं। सर्जक के रूप में विष्णु के ही नाम ब्रह्मा और शिव हैं। सर्जन सकाम क्रिया है। कल्पना है। इसीलिए कला है। कला रूपकल्पन है। सर्जन है।

समकालीन कला में हम कला को सर्जनात्मकता (क्रिएटिविटी) से परिभाषित करते हैं, पर सर्जनात्मकता रचना तत्त्व, दर्शन और संस्कार की दृष्टि से पक्व और पूर्ण नहीं होती। उसके कोई नैतिक या समाजिक सरोकार नहीं होते। उसकी तुलना प्रसव से की जा सकती है। प्रसव की पूर्व कल्पना नहीं की जा सकती। उस पर मन का बस नहीं। चेतन-मन से सर्जन संभव नहीं है और अचेतन-मन से अभिव्यक्ति। चेतन मन से जो होता है वह पूर्व स्मृतियों और बिंबों का संयोजन मात्र होता है। संयोजन एक गणितीय और ज्यामितीय क्रिया है। संयोजन को सर्जन नहीं कहा जा सकता। दोनों पूरी तरह अलग घटनाएँ हैं। कलाकार सर्जन के लिए नहीं अभिव्यक्ति के कारण यश का भागीदार होता है। सर्जन, अभिव्यक्ति क्रिया में परिपक्व होता है।

सर्जनात्मकता के संबंध में आज विज्ञान की जो समझ है उसे रोजर पेररोज की पुस्तक *'द एंपरर्स न्यू माइंड'* पुस्तक के *'नॉन वर्बेबिलिटी ऑफ थाट'* नामक अध्याय में इन शब्दों में दिया गया है।

The words or the language as they are written or spoken do not seem to play any role in my machanism of thought. The conventional words or other signs have to be sought for laboriously only in second stage.

(मेरे विचार की प्रक्रिया में शब्द और भाषा, जैसे कि वे लिखे और बोले जाते हैं, उस रूप में उनकी कोई भूमिका नहीं हैं, सामान्य प्रयोग में आने वाले विचारों का

MV July 2018 final for printing:Layout 1 6/22/2018 11:33 AM Page 15

योगदान रचना की दूसरी प्रक्रिया में ही होता है।)

अनुभूति की अज्ञेयता और शब्द की असमर्थता पर कवि अज्ञेय अपनी कविता में कहते हैं–

'शब्द में समाई नहीं होगी मेरी।
मैं सन्नाटे का छंद हूँ'

वे दूसरी जगह लिखते हैं

'पहले मैं सन्नाटा बुनता हूँ। उसी के लिए सुर तार चुनता हूँ। ताना मजबूत चाहिए.....फिर बाना।'

पर रंग क्या तेरी पसंद के है? अभिप्राय भी क्या मेरे छंद के हैं?

भाषा और कला दोनों ही मानव मन की अभिव्यक्तियाँ हैं और दोनों ही अपने लिए संकेतों के माध्यम से अभिव्यक्ति करते हैं। दोनों ही अपने मूलरूप में नॉन वर्बल हैं। दोनों ही अभिव्यक्ति के लिए संकेतों का उपयोग अभिव्यक्ति की प्रक्रिया में दूसरे स्तर पर करते हैं। इनमें पहला रचनात्मक या सर्जनात्मक स्तर है, जिसमें मनुष्य का सचेतन दिमाग भाग नहीं लेता। दूसरा संरचनात्मक स्तर है, जहाँ संकेतों के माध्यम से मानव मस्तिष्क भाषा या वाक्य रचना करता है। संकेतों और प्रतीकों का स्तर सर्जनात्मकता का है और कला का अर्थ एक संपूर्ण भाषा की अभिव्यक्ति से है।

रमेश कुंतल मेघ (2005) लिखते हैं कि रचना में मनुष्य का अवचेतन मन तथा कल्पना समेत सभी आत्मिक शक्तियाँ भागीदारी करती हैं। रचना के संपूर्ण पाठ में वे संगति और संसक्ति, दिशा, देश, सूचना और अंतर पाठीयता को शामिल करते हैं। मेरे विचार से इस सारे पाठ की मूल ध्वनि को नजरअंदाज नहीं किया जाना चाहिए था।

कला का मनुष्य से संबंध उस समय से है जब वह होमो सेपियन्स की उत्पत्ति के पूर्व निएंडरटल मानवों की क्रो-मेगनन जाति के रूप में धरती पर आया था। वह क्रो-मैगनन मनुष्य गुहाचित्रों का कलाकार था। इस जाति के मनुष्य ने लेसकाक्स और शोवत की गुफाओं में 30,000 वर्ष पूर्व चित्र बनाए। फ्रिटजाफ कापरा (1996) लिन मार्गुलिस और कार्ल सागन के हवाले से कहता है कि आदमी का आदिम पूर्वज यही कहानी कहने वाला और चित्र बनाने वाला आदमी था। सर्जकता इस प्रकार मानव अस्तित्व से ही जुड़ी है। जूलियट रेमंड्स ने नील्स बोर का कथन उद्धृत किया है। उनका कथन है कि अगर परमाणु कणों की आदिम भाषा की बात करें तो उसकी तुलना काव्य की भाषा से की जा सकती है। एक कवि की भाषा तथ्यों का सीधा वर्णन नहीं

भारतीय कला रूप की इकहरी जड़ता के विरुद्ध जीवन के नए भूमि स्पर्शों की रचना है। उज्ज्वलतर और उच्चतर, वह नए रंगबंधों का निर्माण करती है। वेद के ऋषि असत्य से सत्य का और तमस् से प्रकाश की ओर और मृत्यु से अमरता की ओर आरोह की प्रार्थना करते हैं। ये तीनों ही प्रत्यय पार्थिव नहीं हैं।

करती, वह उन्हें प्रतीकों के माध्यम से व्यक्त करती है और वास्तविकता यह है कि बिना संकेतों और प्रतीकों के भाषा का निर्माण हो ही नहीं सकता। यह बात कला के लिए भी उतनी ही सच है।

कला का वागर्थ

ये प्रतिमान वाक् (रचना-शिल्प) से ही संबंधित नहीं अर्थों और ध्वनि रूपों से भी संबंधित हैं। यह सत्य है कि कला के जो गुण भी चर्चित किए जाते हैं वे उसकी रचना से संबंधित हैं और यह भी उतना ही सत्य है। संरचना यदि कला का वस्तुतत्त्व है तो अर्थ उसका वस्तुबोध है, ध्वनि है और उसकी अभिव्यंजना है।

एक रचना को अभिधा, लक्षणा और व्यंजना के तीनों स्तरों पर पढ़ना चाहिए। भारतीय कला रूप की इकहरी जड़ता के विरुद्ध जीवन के नए भूमि स्पर्शों की रचना है। उज्ज्वलतर और उच्चतर, वह नए रंगबंधों का निर्माण

MV July 2018 final for printing:Layout 1 6/22/2018 11:33 AM Page 16

करती है। वेद के ऋषि असत्य से सत्य का और तमस् से प्रकाश की ओर और मृत्यु से अमरता की ओर आरोह की प्रार्थना करते हैं। ये तीनों ही प्रत्यय पार्थिव नहीं हैं। मार्क्सवादी दार्शनिक श्री डी.पी. चट्टोपाध्याय पूरे वैदिक काव्य को भौतिकवादी लक्ष्यों तक समेटने की कोशिश करते हैं और इसके लिए वह डॉ. राधाकृष्णन तक से उलझते हैं पर यह संभव नहीं है। मैंने अन्यत्र लिखा है कि वेद कोई एकालाप नहीं हैं। उसमें अनेक ऋषियों के अनुभव व अनुभूतियाँ दर्ज हैं। इसलिए उसमें से कोई एक मत निकालना और उसे पूरे वेद का दर्शन कहना उचित नहीं है। उसकी खूबसूरती उसके वाङ्मय की विविधता में है। यह प्रवृत्ति उपनिषदों और उनके बाद विकसित सभी पंथों और संप्रदायों में पाई जाती है।

अभिव्यक्ति के स्तर पर पश्चिम में 18वीं सदी तक यथार्थवादी कला का मुख्य स्वर केवल सम्मिति, अनुपात, संतुलन इत्यादि के मापों पर खरी उतरने वाली एक ज्यमितीय आकृति से अधिक कुछ नहीं हो पाया। इसीलिए पश्चिमी कलामानों से प्रेरित पुराने कला समीक्षक भारतीय चित्रकला में कुछ भी सुंदर नहीं देख पाए।

निर्मलवर्मा (1992-93) एक पते की बात कहते हैं। जो विचारधारा संपूर्ण और अंतिम उत्तर देने का दावा करती है वे अलग पड़ जाती हैं। डॉ. विद्यानिवास मिश्र (2001-2002) का कथन है कि भारतीय सौंदर्यशास्त्र के आधार सिद्धांत, वाक् और रस के रूप में वेदों में मिलते हैं। उनके अनुसार प्रतिभा एक बौद्धिक न्याय न होकर आत्मप्रकाश है, जो अचानक उत्पन्न होता है। वैदिक संदर्भ से वे कहते हैं कि वाक् या सृष्टि का विस्तार वहाँ तक है जहाँ तक ब्रह्म का विस्तार है। भर्तृहरि भी इसी वैदिक आधार पर वाक्यपदीय में शब्द या वाक् को ब्रह्म का दर्जा देते हैं। रस सत्ता का सार है। उसकी उत्पत्ति किसी तार्किक प्रणाली का परिणाम नहीं है। विद्यानिवास जी कहते हैं कि रसोन्मेष के बाद उसका शब्दिक वर्णन पृष्ठभूमि में चला जाता है। वस्तुतः रस ही कला का अर्थ है।

सौंदर्य क्या?

हैरान हूँ मैं तुझे देखकर
हैरान हूँ मैं तुझे धरती पर देखकर
तू तो स्वर्ग की चिड़िया थी
हैरान हूँ मैं
किसने भेजा है तुझे गंगा-जमुना की हवाओं में
सरस्वती की सुर धाराओं में समेट कर।

पश्चिम में सौंदर्यशास्त्र या एस्थिटिक्स का जन्म अलेक्जेंडर गोटलीव वॉमगार्टन के द्वारा सन् 1735 में हुआ। उनके अनुसार कला वस्तुतः अनुकरण ही है (लक्ष्मी सक्सेना 1990)। भारत में आचार्य वामन के अनुसार अलंकार शास्त्र सौंदर्य का अध्ययन है। रुद्रट के अनुसार काव्य के सौंदर्य के लिए शब्दों का ललित गुंफन ही नहीं अर्थ भी चाहिए।

अरस्तु जब मनुष्य को सभी वस्तुओं का माप मानता है तो यह इसलिए सच है कि उसके पास मन और बुद्धि के रूप में चेतना का द्विपद है। इन दोनों के आधार पर ही उसके अनुसार एक समग्र अनुभव संभव है। अगर सम्मिति और संगति इत्यादि जैसे भौतिक मानों से ही सौंदर्य बोध संभव होता तो हँसते हुए और रोते हुए दोनों ही चेहरे एक समान सुंदर होते। क्योंकि द्विसम्मित आदमी के हँसने और रोने में दोनों और मांसपेशियों का खिंचाव सम्मित या एक सा होता है। यह अनुभव कला को केवल दृश्य वस्तु मान लेने से संभव नहीं। कला वह ही नहीं होती जो हमें दिखती है। उसका सही रूप वह होता है, जिसका हम अनुभव करते हैं। ये अनुभव समय और संस्कृतियों के अंतर से बदल जाते हैं। उदाहरण के लिए शिवलिंग जहाँ भारत में श्रद्धा और पूजा का भाव

MV July 2018 final for printing:Layout 1 6/22/2018 11:33 AM Page 17

जगाता है, पश्चिम के मानस में वह यौन प्रतीक से कुछ अधिक नहीं हो पाता।

यद्यपि प्लेटो ने कला को नैतिक न्याय का एक उच्चतर और उज्ज्वलतर आधार दिया किंतु अभिव्यक्ति के स्तर पर पश्चिम में 18वीं सदी तक यथार्थवादी कला का मुख्य स्वर केवल सम्मिति, अनुपात, संतुलन इत्यादि के मापों पर खरी उतरने वाली एक ज्यमितीय आकृति से अधिक कुछ नहीं हो पाया। इसीलिए पश्चिमी कलामानों से प्रेरित पुराने कला समीक्षक भारतीय चित्रकला में कुछ भी सुंदर नहीं देख पाए। इसका कारण इन समीक्षकों की दृष्टि में समग्रता के बोध का अभाव था। इंद्रियों के गणित में सौंदर्य, आँख का सुख है, पर वस्तु का स्थूलरूप जो आँख देख सकती है उतना कैमरा भी देख सकता है। जो अनुकरणवादी रियलिस्ट कलाकार एक पोर्टेट घंटों की मेहनत और बरसों के अभ्यास के बाद बनाता है। वह कार्य कैमरा मिनटों में बेहतर ढंग से कर देता है। रेखाकर्म जो रेखागणित की सीमाओं से अधिक है वही भारतीय कला है। भारतीय कलाकार रूपों का अनुकरण ही नहीं करता, वह नए-नए रूपों का सर्जन करता है। जब वह श्रीयंत्र बनाता है तो यंत्र के साथ ही वह एक मंत्र भी होता है। उसका अर्थ भी होता है। भारतीय कलाबोध ने जिन देवमूर्तियों का सर्जन किया है, वह कैमरे की शक्ति के बाहर हैं।

सौंदर्य सत्य और शिव दोनों से पृथक एक तीसरी स्वतंत्र सत्ता है। कला अपने में नैतिक अथवा अनैतिक होने के प्रश्नों का बोझ नहीं सहती। वह प्रकृति के समान सहज और निष्पाप होती है। एक सुंदर लड़की के चेहरे पर मुस्कान उसके सौंदर्य को कई गुना कर देती है। यह सिर्फ देह का शिल्प नहीं, मन भी इस चमत्कार में शामिल होता है। माथे की बिंदी जिस प्रकार उसके स्वाभाविक सौंदर्य को द्विगुणित कर देती है, उसका कारण भी केवल देह में ढूँढना उचित नहीं है। चेतना के प्रश्नों को गणित के समीकरणों में बाँधना अभी तक विज्ञान के लिए संभव नहीं हुआ है। सौंदर्य का निजी स्वरूप क्या है? कला के संदर्भ में केवल यही कहा जा सकता हैं कि सौंदर्य अभिभूत करता है। वह मन का एहसास है। रस के समान वह भी अनुभूति का विषय है। सौंदर्य रूप पर आश्रित है। रूप प्रकृति में हो या सर्जित, वह देखने वाले की आँख और उसके अनुभव ही पर आश्रित रहता है। ऐसा कहना भी कि पश्चिम का सारा सोच केवल इंद्रियपरक था, पूरा सच नहीं है। कान्ट के परवर्ती फ्रेड्रिक शिलर (1759-1805) के अनुसार कला समीक्षा में ऐंद्रिक और मानसिक दोनों ही प्रकार के प्रत्ययों का ध्यान रखा जाना चाहिए। मानसिक स्तर पर इमेनुअल कान्ट (1790) व्यक्तिगत स्वरुचि और सौंदर्यानुभव में अंतर करता है। उसके अनुसार अलग व्यक्तियों की अलग-अलग रुचि हो सकती है पर सौंदर्य के अनुभव का

रेखाकर्म जो रेखागणित की सीमाओं से अधिक है वही भारतीय कला है। भारतीय कलाकार रूपों का अनुकरण ही नहीं करता, वह नए-नए रूपों का सर्जन करता है। जब वह श्रीयंत्र बनाता है तो यंत्र के साथ ही वह एक मंत्र भी होता है। उसका अर्थ भी होता है। भारतीय कलाबोध ने जिन देवमूर्तियों का सर्जन किया है, वह कैमरे की शक्ति के बाहर हैं।

दायरा सौंदर्य दृष्टि के विस्तार से, प्रतिमानों की सहायता से बढ़ाया जा सकता है या कम किया जा सकता है और सौंदर्य के ये प्रतिमान सभी के लिए समान होते हैं। हम बहुत सी चीजें देखते हैं, पर उन पर ध्यान नहीं देते। इस ध्यान को कान्ट रिफलेक्टिव कांटेम्प्लेशन कहता है। सौंदर्यशास्त्र हमारे ध्यान का दायरा बढ़ाता है और हम वस्तुओं में निहित सौंदर्य के प्रत्ययों को बेहतर तरीके से समझ पाते हैं। सौंदर्य के हमारे निर्णयों में हमारे भावनात्मक, बौद्धिक, सामाजिक और परिवेश के

MV July 2018 final for printing:Layout 1 6/22/2018 11:33 AM Page 18

संस्कार बड़ी भूमिका निभाते हैं। कांट के चिंतन में मनुष्य, उसकी स्वतंत्रता, उसकी रचनात्मक इच्छाशक्ति और उसके अस्तित्व का अर्थ, केंद्रीय विचार थे। कला उसकी रचनात्मक इच्छाशक्ति का ही परिणाम है।

भारत में कलाकार रूप-लावण्य और रूप-माधुर्य में अंतर करते हैं। रूप-लावण्य रूप का आँख से अनुभव करना है। रूप-माधुर्य रूप को रस बनाकर मन में रचाना -बसाना है, भारतीय कलाकार रस को कला का अंतिम परिपाक मानता है। वह उसे अपने रचनाकर्म से अलग नहीं कर सकता।

हीगेल और क्रोचे सर्जित सौंदर्य को प्राकृतिक सौंदर्य पर वरीयता देते हैं, क्योंकि उसमें मानवीय संवेदनशीनता और सौंदर्यानुभूति का अतिरिक्त भाव रहता है। सौंदर्य की अभिव्यक्ति, सौंदर्य को पार्थिवता से अतिक्रांत करती

भारत में कलाकार रूप-लावण्य और रूप-माधुर्य में अंतर करते हैं। रूप-लावण्य रूप का आँख से अनुभव करना है। रूप-माधुर्य रूप को रस बनाकर मन में रचाना-बसाना है, भारतीय कलाकार रस को कला का अंतिम परिपाक मानता है। वह उसे अपने रचनाकर्म से अलग नहीं कर सकता।

है। पर मार्क्सवादी सौंदर्यशास्त्री वस्तुबोध से ग्रसित होने के कारण तथ्य के आगे चेतना के अन्य आयामों को नहीं देख पाते। वे अरस्तु के समान सौंदर्य को भी गणित के नियमों में बाँधना चाहते हैं।

वैदिकदर्शन की दृष्टि से मनुष्य सृष्टि के नियमों में बँधा होने के कारण पशु है। कला मानव स्वतंत्रता की खोज है। कला भी जब अपने ही या बाहर के नियमों में जकड़ जाती है, न अपने को खोल पाती है और न अपनी भाषा बोल पाती है तो वह पाशविक हो जाती है। केवल ज्यामितीय गणित पर निर्भर, आत्महीन यह कला मात्र गुंताड़ा होती है।

गणित के नियमों से बंधी यह यांत्रिक कला वैदिक और तांत्रिक दोनों दृष्टि से पाशविक है। तंत्र के अुनसार सत्ता जो नियमों से बंधी हैं, पशु है। वेद भी यही कहते है। वेद के एक रूपक के अनुसार सृष्टि का यज्ञ, जिसका देवों ने वितान किया, उसकी 'सात परिधियाँ' है। इस यज्ञ में 21 प्राणाग्नियाँ ईंधन या समिधाएँ हैं और इस यज्ञ में पशु के रूप में पुरुष को बाँधा गया है। देह, प्राण और मन के तीन बँधनों से बँधा यह जीव रूप वृषभ रोता रहता है। नियमों से बँधा यह प्राणरूप जीव दो तटों के बीच बहने वाली मंदवेगा नदी के समान है। यह पत्थरों की पाशविक काराओं को तोड़कर बहने वाली तीव्रवेगा निर्झरिणी नहीं है जो नियति के नियमों को अस्वीकार कर अपना पथ बनाती है। सर्जकशक्ति के रूप में मम्मट अपने ग्रंथ 'काव्यप्रकाश' में सरस्वती की वंदना *'नियतिकृत नियम रहिताम्, नवरस रुचिराम'* लिखकर करते हैं।

भौतिक अस्तित्व यांत्रिक है। स्वतंत्र इच्छा के अभाव में जैविक अस्तित्व पाशविक है। पशुओं का व्यवहार डी.एन.ए से नियंत्रित है, किंतु मानव अस्तित्व स्वतंत्र इच्छाशक्ति के कारण पशुओं से भिन्न है। जो दर्शन, मनुष्य की गणना संरचना और व्यवहार के कारण पशुओं में करते हैं, तार्किक रूप में उन्हें भौतिक के स्थान पर पाशविक कहना अधिक संगत होना चाहिए। इसीलिए साम्यवादी एवं पूंजीवादी इन दोनों भौतिकवादी दर्शनों की गणना वर्तमान विमर्श में पाशविक दर्शनों की कक्षा में की गई है।

समकालीन कला में पाशविक कला के दो रूप हैं। पहला साम्यवादी, दूसरा पूंजीवादी। पाशविकता मनुष्य की स्वतंत्रता की इच्छा को नकारती है। चूंकि वह आत्मा के अस्तित्व से इंकार करती है, इसीलिए वह मानव-मशीनों या मशीनी-मानवों का उत्पादन करती है और उन पर समाज के विवेक का नियंत्रण चाहती है। मार्क्सवादी

MV July 2018 final for printing:Layout 1 6/22/2018 11:33 AM Page 19

और पूंजीवादी दोनों ही मनुष्य के स्थान पर आर्थिक कारणों को इतिहास की परिवर्तनकारी शक्ति मानते हैं। मनुष्य समय की धारा में केवल धकेले जाने के लिए नियतिबद्ध है। मार्क्सवाद का इतिहास का नियतिबद्ध होना स्वीकार करता है। वह इतिहास के नियतिबद्ध परिवर्तनों की व्याख्या करता है और इसी आधार पर भविष्य की घटनाओं का व्याख्यान करता है। इस दर्शन के अनुसार नैतिक या अनैतिक और अच्छा या बुरा अपने में कुछ भी नहीं है। नैतिक होना किसी *मोरल कोड* पर आश्रित नहीं है। वह परंपरागत नैतिक विचारों पर आश्रित नहीं है। व्यक्ति के जिस आचरण से समाज की मशीन के सामान्य व्यवहार पर कोई विपरीत असर नहीं पड़ता वही नैतिक है। रचनातंत्रों के नियमों के अनुसार व्यवहार करना ही नैतिक है और जो इसके विपरीत आचरण करता है वह अनैतिक है।

अवनेर जिस (1977) लिखता है कि भौतिकवादी सौंदर्यशास्त्र, सौंदर्य के वस्तुवादी गुण के आधार पर टिका है उसके लिए चेतना भी एक संरचनात्मक उत्पाद है। वह सत्ता को एक यंत्र के अतिरिक्त अधिक नहीं समझता, किंतु वेद और तंत्र दोनों की ही दृष्टि से यह एक पाशविक सोच है। तंत्रशास्त्र भी नियम एवं नियतिबद्धता के कारण मनुष्य की गणना पशुओं में करता है किंतु वह मनुष्य को ऐसा पशु मानता है जिसमें स्वतंत्र इच्छाशक्ति के कारण शिवत्व की संभावना है। आत्मनियंत्रण के अतिरिक्त, अन्य सभी नियंत्रण, चाहे वह किसी एक व्यक्ति के हों अथवा किसी भी सामाजिक संगठन के, उनकी गणना पाशविक वर्ग में ही की जा सकती है।

समाजवादी प्रणाली कला पर साम्यवादी विचारधारा के नियंत्रण की पक्षपाती थी। कला के संबंध में लेनिन ने कम्युनिस्ट पार्टी की 25वीं कांग्रेस में कहा था कि कला एवं सांस्कृतिक गतिविधियों का *प्रशासनिक मार्गदर्शन* समझदारी से किया जाना चाहिए। यह किसी यांत्रिक तरीके से नहीं किया जा सकता (मकारोव 1980 कलेक्टेड वर्क्स ऑफ लेनिन 10,46)। यू. बाराबाश (1980) लिखता है कि पूर्णतया वैज्ञानिक ये सिद्धांत कठोर है, लेकिन ऐसे भी नहीं है जिन्हें बदला न जा सके। पार्टी का व्यावहारिक अनुभव उन्हें मार्क्सवादी-लेनिनवादी की सीमा में लगातार गहरा बनाता रहता है। मार्क्सवाद-लेनिनवाद को अलग कर दें तो माओवादी दृष्टि से बंदूक के बाद, कलम लड़ाई का दूसरा मोर्चा है (माओत्जे दुंग 2003)। इस मोर्चे पर जितना रक्तपात किया गया है वह किसी भी जिहाद या क्रूसेड में बहाए जाने वाले रक्त से कम नहीं है। भारत में भी उनके यही दो मोर्चे हैं। नक्सलवाद माओवाद का ही भारतीय चेहरा है।

मार्क्सवाद-लेनिनवाद को अलग कर दें तो माओवादी दृष्टि से बंदूक के बाद, कलम लड़ाई का दूसरा मोर्चा है (माओत्जे दुंग 2003)। इस मोर्चे पर जितना रक्तपात किया गया है वह किसी भी जिहाद या क्रूसेड में बहाए जाने वाले रक्त से कम नहीं है। भारत में भी उनके यही दो मोर्चे हैं। नक्सलवाद माओवाद का ही भारतीय चेहरा है।

द्वंद्वात्मक भौतिकवाद

साम्यवादी कलादृष्टि जिन मुहावरों में अपने लिए प्रकट करती है, वे हैं- एंद्रिक, व्यावहारिक, सक्रियता, वर्गहित, सर्वहारा, द्वंद्वात्मक भौतिकवाद, वर्गसंघर्ष, समाजवादी यथार्थ, इत्यादि। वह व्यक्ति के रूप में मानव अस्तित्व की सच्चाई के स्थान पर मानव समाज को एक व्यावहारिक यथार्थ के रूप में स्वीकार करती है। किंतु ये सभी वैचारिक विकल्प वैज्ञानिक धरातल पर खरे नहीं उतर पा रहे हैं। इस संबंध में मैं प्रसिद्ध भौतिकविज्ञानी रिचर्ड पी. फिनमैन (1995) का कथन उक्त कर रहा हूँ। वे पूछते हैं कि स्नायुओं के सिरे पर

MV July 2018 final for printing:Layout 1 6/22/2018 11:33 AM Page 20

क्या होता है? भौतिकशास्त्र इतना ही बता पाता है कि स्नायुओं के सिरे एसीटोकोलाइन नामक रसायन के 5 से 10 अणु शूट करते हैं। आगे विज्ञान चुप है। फिनमैन लिखता है '*दस द फंडामेंटल प्रोसेसेज इन द मसल दैट मेक मैकेनिकल मोशन्स आर नॉट नोन*।' पर मार्क्सवादी जानते हैं कि इसका उत्तर द्वंद्वात्मक भौतिकवादी की आस्था में जरूर होगा।

मार्क्स कला का सौंदर्य सामाजिक-राजनीतिक सच्चाइयों में देखता है। उसके अनुसार कला का उद्देश्य समय की सामाजिक-राजनीतिक सच्चाइयों को सामने लाना है। इसी कारण बाल्जाक और डिकेंस उसकी व्यक्तिगत पसंद थे। वह कला को एक विश्लेषक की दृष्टि से देखता था। *अवनेर जिंस* लिखता है मार्क्सवादी-

सामाजिक नियतिवाद निर्णय की सारी सत्ता समाज के हाथ में सौंप देता है, फिर व्यक्तिगत स्वतंत्र इच्छा का कोई अर्थ ही नहीं रहता। मानव अधिकारों का कोई मूल्य नहीं रहता। मार्क्सवादी समता का मूल्य मनुष्य से स्वतंत्रता का अधिकार छीनकर चुकाता है। हिंदुत्व की बात करने वालों को फासीवादी बताने वाला मार्क्सवादी स्वयं फासीवाद का वकील है।

लेनिनवादी कला व्यवहार पक्ष पर बल देती है। वह एक ऐसी सामाजिक चेतना और रचनात्मकता का स्फुरण है जो एक प्रयोगशील व्यावहारिक संस्कृति को जन्म देती है। मोटे रूप से मार्क्सवादी-लेनिनवादी कला में बुद्धिवादी रुझान है। वह भावमन को रूमानी कहकर कला और कविता के आसन से उठा देती है। समाज के इतिहास में व्यक्ति केवल ईंधन है। इसलिए मार्क्सवादी कला या कविता में व्यक्तिगत अनुभव या अनुभूति का कोई अर्थ नहीं है। *'आर्ट एज इन आइडियोलाजिकल फिनामिनन'* नामक लेख में माकारोव (1980) लिखता है– कला में वैचारिक प्रतिबद्धता, जो किसी प्रकार से व्यक्त की जाए, उसकी व्याख्या केवल मार्क्सवादी के सामाजिक नियंत्रण के सिद्धांत द्वारा ही की जा सकती है जिसका विकास, ऐतिहासिक भौतिकवाद के दायरे में हुआ है। वैज्ञानिक दृष्टि से आज का जीवविज्ञान विकास में *दिशात्मकता या टीलियालोजी* के सिद्धांत को नकार चुका है और इसी प्रकार आधुनिक भौतिकशास्त्र ने भी भौतिकशास्त्र से नियतिवाद (डिटरमिनिज्म) को रचनाओं के प्रारंभिक स्तर पर ही खारिज कर दिया है। जीवों का विकास प्रकृति द्वारा अवसर और संभवनाओं के बीच से सर्वोत्तम संभावना के वरण से होता है। मार्क्सवादी की सबसे बड़ी कमजोरी उसका लेमार्कियन और टीलियोलोजिकल रुझान है। विज्ञान तो विकास की प्रक्रिया में आर्थोजिनिसिस के सिद्धांत को भी स्वीकार नहीं करता। फ्रॉयड ने मनोरचना को कला का कारण माना।

सामाजिक नियतिवाद

इन सारे संदर्भों के बीच सामाजिक नियतिवाद को एक अवैज्ञानिक तर्क ही कहा जाएगा। सामाजिक नियतिवाद निर्णय की सारी सत्ता समाज के हाथ में सौंप देता है, फिर व्यक्तिगत स्वतंत्र इच्छा का कोई अर्थ ही नहीं रहता। मानव अधिकारों का कोई मूल्य नहीं रहता। मार्क्सवादी समता का मूल्य मनुष्य से स्वतंत्रता का अधिकार छीनकर चुकाता है। हिंदुत्व की बात करने वालों को फासीवादी बताने वाला मार्क्सवादी स्वयं फासीवाद का वकील है। इस व्यवस्था में राज्य-समाज के प्रतिनिधि के रूप में एक पार्टी तंत्र सारे समाज को 19वीं सदी के घिसे-पिटे सोच के सहारे, संपूर्ण मानव समाज को अपने पीछे हाँकता है। भारत में गांधी और अंबेडकर दोनों ने ही इस सोच को नकार दिया था। मार्क्सवादी दर्शन के आधार पर इतिहास निर्माण की द्वंद्ववादी विधि तर्क संगत नहीं है। प्रभाकर श्रोत्रिय (1982) लिखते हैं कि प्रगतिवादी लेखकों ने ज्यादातर

MV July 2018 final for printing:Layout 1 6/22/2018 11:33 AM Page 21

राजनीतिक, आर्थिक शब्दावली से कविता की भाषा का संहार किया है। यह सोचना कि इतिहास की रचना में केवल आर्थिक और सामाजिक कारक निर्णायक होते हैं, सोच का इकहरापन है। स्वयं समाज जगत् के पारिस्थितिक तंत्र में एक घटक है। तंत्र में वह आज भी निर्णायक स्थिति में नहीं है। संक्रमण की जिस स्थिति से वह गुजर रहा है उसमें तो उसकी भूमिका महत्त्वपूर्ण होने के बावजूद पर्यावरण और पृथिवी की सुरक्षा की दृष्टि से संदेहास्पद है।

दुनिया रूस और चीन दो महादेशों में साम्यवादी आस्था के असफल जिहाद देख चुकी है। यदि समाजवादी स्वर्ग कहीं संभव होता तो समतामूलक समाज की रचना के स्थान पर साम्यवादी समाज पूंजीवाद को पीछे के दरवाजे से न ला रहे होते। वर्ष 2007 के दो तीन दिन के समाचारपत्रों को देख लें। कम्यूनिस्ट पार्टी की 17वीं कांग्रेस को संबोधित करते हुए चीन के राष्ट्रपति हूँ जिंताओ ने कहा था कि चीन में भविष्य में भी आर्थिक सुधारों की गति रुकने नहीं दी जाएगी। यह सब वैज्ञानिकों की उन चेतावनियों के बाद है जो पूंजीवादी आर्थिक विकास को पृथिवी और पर्यावरण के विरुद्ध बताते हैं। चीन ही नहीं इटली की कम्यूनिस्ट पार्टी के उप प्रधानमंत्री मेसिमो डि अलेमा का बयान पढ़ लें। यह वही इटली है जिसके अंतोनियो ग्रमिसी ने मरते मार्क्सवाद में वैचारिक जान फूँकने का आखिरी प्रयास किया। मेसिमो डि अलेमा कहते हैं– ''मार्क्स हमारी सांस्कृतिक विरासत का हिस्सा है। मार्क्स तो ठीक पर मार्क्सिजम नहीं। हम एक ऐसे नए वाम की रचना कर रहे हैं जिसमें मार्क्सवाद नहीं होगा''(हिंदू , अक्टूबर 15, 2007)। संदेह हो तो अब 18 अक्टूबर 2007 का इसी अखबार का समाचार- *'चाइना टु इंडक्ट मोर नॉन कम्यूनिस्ट्स इन द केबिनिट'* देखें।

जिओर्जी ल्यूकास (1985) कला के मार्क्सवादी दार्शनिक रहे हैं। वे लिखते हैं कि कलाकर्मों का अस्तित्व है, इसीलिए यह सोचना चाहिए कि वे कैसे संभव हुए हैं? यदि कोई विचार इसकी विधि नहीं बता पाता या व्याख्या नहीं कर पाता तो उसे निरस्त कर देना चाहिए। वह लिखता है कि कला के सत्य में ही उसका विलोम भी निहित हैं। वह किसी एक क्षण वस्तुगत अनुभव के जितना निकट है दूसरे ही क्षण वह उतनी ही दूर भी।

इटली का प्रसिद्ध दार्शनिक गियान्नी वात्तिमो (1988) अपनी पुस्तक 'द एंड ऑफ माडरनिटी' में लिखता है कि योरोप में अवांत-गार्दे सोच के बाद से प्रयोगधर्मिता कला का धर्म बन गया है। कला पुरानी स्थापनाओं के आगे निकलकर नई तकनीकियों और

दुनिया रूस और चीन दो महादेशों में साम्यवादी आस्था के असफल जिहाद देख चुकी है। यदि समाजवादी स्वर्ग कहीं संभव होता तो समतामूलक समाज की रचना के स्थान पर साम्यवादी समाज पूंजीवाद को पीछे के दरवाजे से न ला रहे होते।यह सब वैज्ञानिकों की उन चेतावनियों के बाद है जो पूंजीवादी आर्थिक विकास को पृथिवी और पर्यावरण के विरुद्ध बताते हैं।

दृश्य और श्रव्य साधनों के संपर्क से नए सौंदर्यशास्त्र को जन्म देना चाहती है। यह सौंदर्यशास्त्र किसी एक व्यक्ति की प्रतिभा का परिणाम न हो कर समूह की कृति होगा।

पर भारत में कला और साहित्य से आत्मा को निकालना मार्क्सवादियों के लिए भी संभव नहीं हुआ। आगे हम गजानन माधव मुक्तिबोध के कला संबंधी विचारों पर चर्चा करेंगे। जिन पर डॉ. नामवर सिंह भी गंभीर हैं। जरा नीचे लिखे मुहावरों पर विचार करें। फिर बताएँ कि अगर यह मार्क्सवाद है तो यह भारतीय दर्शन से कहाँ भिन्न है। ये मुहावरे मैंने मुक्तिबोधजी की पुस्तक *नए साहित्य का सौंदर्यशास्त्र* (1993) से चुने हैं। ये हैं - *संवेदनशील अंतर्जीवन, कलात्मक रचना का मनोविज्ञान, सौंदर्याभिरुचि, आत्मानुभूत जीवन संदर्भ,*

MV July 2018 final for printing:Layout 1 6/22/2018 11:33 AM Page 22

ज्ञानात्मक भावधारा, अपनी उच्चतर स्थिति में उद्‌बुध, विहंगावलोकन इत्यादि। इनमें तो अरस्तु के स्थान पर प्लेटो बोल रहा है। अगर यह किसी कम्यूनिस्ट के विचार होते तो *आत्मानुभूत* जीवन संदर्भ की जगह मनोनुकूल जीवन संदर्भ होते। आदमी यदि भौतिक यंत्र है तब तो उसकी स्वतंत्रता की बात ही बेमानी है। बात तो आत्मा की स्वतंत्रता की ही हो सकती है। मन की स्वतंत्रता का अर्थ तो स्वेच्छाचार है।

वे नरेश मेहता की कविता के संदर्भ में लिखते हैं। समय के विशाल केनवस पर देश-देशांतरों के मानव चित्रों का विहंगावलोकन करने का श्रेय नरेश मेहता को प्राप्त है। उन्होंने प्रकृति सौंदर्य को वैदिक संस्कृति की आँखों से देखा है और उसके भव्य उदात्त चित्र खड़े किए हैं। कबीर के संबंध में वे कहते हैं कि ''जबतक कबीर अपने रंग में मस्त होकर जीवन का ज्ञान सुनाता है वह कलाकार है, पर जब वह हमें उसके बौद्धिक दार्शनिक निर्गुणवाद के प्रति आस्था रखने के लिए आग्रह करता है तो वहीं वह कला का दृष्टिकोण छोड़कर दार्शनिक दृष्टिकोण के क्षेत्र में उत्तर आता है।'' वे आगे लिखते हैं- ''कलाकार के लिए आवश्यक नहीं कि वह कोई दार्शनिक आधार ग्रहण करे- कि वह बँधे बँधाए ढ़ाँचे को यांत्रिक रूप से स्वीकार करे। किंतु किसी भी कलाकृति में लेखक की जीवनदृष्टि अवश्य प्रकट होती है।'' अब तो यह डॉ. नामवरसिंह जी को ही बताना होगा कि मार्क्सवाद एक दार्शनिक दृष्टि है अथवा जीवन दृष्टि। नई कविता के संदर्भ में वे कहते हैं कि ''नई कविता रोमांटिक स्वप्नशीलता, आत्मरतिमय आध्यात्मिकता की कविता नहीं है, वह मूलतः एक परिस्थिति के भीतर पलते हुए मानव हृदय की पर्सनल सिचुएशन की कविता है।'' यहाँ रचना प्रक्रिया के संबंध में रमेश कुंतल मेघ (2005) के विचार भी पठनीय हैं। वे कहते हैं कि ''रचना वह प्रक्रिया है जिसमें नई सामग्री तथा आत्मिक मूल्यों की रचना होती है।'' मेरा कथन केवल इतना ही है कि कविता की इस शाश्वत वृत्ति को नई कविता का नाम देना कहाँ तक संगत है। महाभारत का ही उदाहरण लें। व्यास कवि हैं। वे कुरुवंश के चरित्र के स्खलन से क्लांत हैं। वह स्थितियों और चरित्रों का वस्तुपरक वर्णन करते हैं, इसलिए दोनों हाथ उठाकर भीष्म के माध्यम से कहते हैं- ''मैं कह रहा हूँ कि *धर्म से ही अर्थ, काम और मोक्ष की सिद्धि होती है पर मेरी कोई नहीं सुनता - न कश्चिद्‌श्रुनोति मे।*'' महाभारत तो परम पुराण है, तो क्या उसमें हम कथित नई कविता की वृत्ति नहीं देखते? महाभारत में आत्मरति और स्वप्नशीलता कहाँ है? मेरा कहना है कि कविता केवल कविता होती है। न नई, न पुरानी। न आधुनिक न पौराणिक। यही बात कला के लिए है। आधुनिकता के प्रतिमान के रूप में जिस नवीनता की बात की जाती है, उसके प्रतिमान भी साफ नहीं हैं। यदि केवल बौद्धिकता को ही आधुनिकता का लक्षण माना जाएगा, तो फिर संगीत और नृत्य जैसी कलाएँ तो कला के क्षेत्र में सदा के लिए बाहर हो जाएँगी।

कविता केवल कविता होती है। न नई, न पुरानी। न आधुनिक न पौराणिक। यही बात कला के लिए है। आधुनिकता के प्रतिमान के रूप में जिस नवीनता की बात की जाती है, उसके प्रतिमान भी साफ नहीं हैं। यदि केवल बौद्धिकता को ही आधुनिकता का लक्षण माना जाएगा, तो फिर संगीत और नृत्य जैसी कलाएँ तो कला के क्षेत्र में सदा के लिए बाहर हो जाएँगी।

पूंजीवादी कला

'तुझसे नाराज नहीं हूँ जिंदगी हैरान हूँ मैं। तेरे मासूम सवालों से परेशान हूँ मैं।' -गुलजार

पूंजीवाद में कला का रूप क्या होगा? जिस यक्ष संस्कृति का पूंजीवादी कला ने निर्माण किया है उस यक्ष

MV July 2018 final for printing:Layout 1 6/22/2018 11:33 AM Page 23

का प्रत्यक्ष सामना किए बिना उसके आतंक से मुक्ति संभव ही नहीं है। समाचार है कि तायवान तेपेई में नीना चेन ने एक नृत्य का स्कूल खोला है। जहाँ बच्चों को नाचते-नाचते नंगे होने की कला सिखाई जाती है (हिंदू, 29 मई)। इस कला में बेशर्मी को आत्मविश्वास बढ़ाना कहा जाता है। भारत में कला पर पूंजीवादी हमला कम चिंताजनक नहीं है। इन दिनों टीवी चैनलों पर संगीत और नृत्य की प्रतियोगिताओं (विश्वयुद्धों) की धूम है। आने वाले समय में भारतीय संगीत और कला की क्या दिशा होगी, इसका संकेत इन मैगा ईवेंट्स को देखकर लगाया जा सकता है। इनमें जो जज थे उनमें एक भी ऐसा नहीं था, जिसे भारतीय परंपरागत नृत्य या संगीत जगत् में कोई बड़ी जगह हासिल हो। नृत्य या संगीत के अब ये कला रूप दूरदर्शन के राष्ट्रीय कार्यक्रमों के लिए बच गए हैं। पर उनमें एकरसता और उबाऊपन होता है। दूसरी ओर इन कथित मेगा ईवेंट्स के जजों के पास समीक्षा के लिए केवल कुछ चुने हुए शब्दों जैसे - हॉट, सेक्सी, फेंटास्टिक, राकिंग, माइंड-ब्लोइंग, एनर्जी, सुपरब इत्यादि के सिवाय कुछ भी नहीं होता। केवल एक दो जगहें कभी-कभी संयोगवश, जैसे गुलजार साहब का गीत 'तुझसे नाराज नहीं हूँ जिंदगी हैरान हूँ मैं, परेशान हूँ मैं।' जहाँ कथित जजों के मुँह से बरबस हिंदी फूटी। ''इस गीत ने दिल को छू लिया। मुझे रुला दिया''। नृत्यों के स्तर के संबंध में तो इतना ही कहा जा सकता है ड्रिल, डाँस और नंगई के मिक्सचर के सिवा इनमें कुछ भी नहीं होता।

हम समकालीन कला को सेंसुअल और सेक्सुअल इन दो प्रत्ययों द्वारा परिलक्षित कर सकते हैं। इसे ही हम रियलिज्म या यथार्थवाद कहते हैं। आइंस्टीन इस ऐंद्रिक यथार्थवाद को नेव रियलिज्म कहता है। लीक से अलग कुछ भी करना एक अन्य प्रत्यय है जिससे आधुनिक कला पहचानी जाती है। इटली का प्रसिद्ध दार्शनिक गियान्नी वात्तिमो (1988) अपनी पुस्तक 'द एंड ऑफ माडरनिटी' में लिखता है कि यूरोप में अवांत-गार्दे सोच के बाद से प्रयोगधर्मिता कला का धर्म बन गया है। प्रयोगधर्मिता स्टंट की सीमा तक कला में प्रवेश कर चुकी है। कलाकार डामियन हिर्स्ट के एक इंस्टालेशन का विवरण 11 नवंबर, 2007, दैनिक हिंदू में छपा है। समीक्षक की अखबार में टिप्पणी थी, होल थिंग इज ग्रेट। विवरण के अनुसार एक 12 फीट ऊँचे टैंक में 10 हजार लीटर फारमलडिहाइड भरकर उसके बीच में एक सफेद कबूतर लटकाया गया, जिसके पंख पिंजड़े में फैले हुए थे। कलाकृति में कबूतर के दोनों ओर एक गाय को बीच से काटकर उसके दोनों हिस्से लटकाए गए थे। कला में जो कमी थी उसे तले हुए माँस की छोटी-छोटी नलिकाओं के बंदनवार से पूरा किया गया था। पास

भारत में कला पर पूंजीवादी हमला कम चिंताजनक नहीं है। इन दिनों टीवी चैनलों पर संगीत और नृत्य की प्रतियोगिताओं (विश्वयुद्धों) की धूम है। आने वाले समय में भारतीय संगीत और कला की क्या दिशा होगी, इसका संकेत इन मैगा ईवेंट्स को देखकर लगाया जा सकता है।

ही एक चमड़े की बड़ी कुर्सी और खुला हुआ छाता था। गाय के दोनों टुकड़ों के बीच में कबूतर जिसे शिक्षक का प्रतीक बताया गया उसके सामने 29 खाल खींची हुई सिर कटी भेड़ों की कतार थी जिसे विद्यार्थियों के सिंबल के रूप में दर्शाया गया। इस कक्षा के पीछे एक शार्क को दिखाया गया है जो शैतानी की मुद्रा में है। यह इंस्टालेशन मैनहट्टन के लिवर हाउस में प्रदर्शित किया गया। इसका कोई भी प्रतीकात्मक अर्थ हो पर यह करोड़ों शाकाहारी लोगों की संवेदना को चोट पहुँचाने वाला था। इससे बचा जा सकता था। भारत में तो इसे देखकर इतने लोग उल्टी करते कि साफ करने वाले थक जाते। कहा गया

MV July 2018 final for printing:Layout 1 6/22/2018 11:33 AM Page 24

यह सरियालिस्ट स्थापना का एक बेहतरीन नमूना था। इस स्कूल के इंस्टालेशन के लिए हिर्स्ट को एक करोड़ डालर मिले।

मैं कलाकर्म को एनीमेशन या प्राणन से परिभाषित करता हूँ। कला वह जो एनीमेट करे। मरी संवेदनाओं को जीवन दे। अचेतन संवेगों को जाग्रत करे। फिर वह कला कहीं से आए, पूरब की हो या पश्चिम की इससे उसकी आदरणीयता कम नहीं होती। कला केवल सम्मोहित नही करती वह सौंदर्य के संसार में जगाती है। वह समय से साक्षात्कार कराती है। यह जागरण ही एनीमेशन है।

नवीनता, आधुनिकता का एक मात्र प्रत्यय नहीं है। परिभाषाकारों ने नवीनतम, प्रगति और जीवनदृष्टि

मैं कलाकर्म को एनीमेशन या प्राणन से परिभाषित करता हूँ। कला वह जो एनीमेट करे। मरी संवेदनाओं को जीवन दे। अचेतन संवेगों को जाग्रत करे। फिर वह कला कहीं से आए, पूरब की हो या पश्चिम की इससे उसकी आदरणीयता कम नहीं होती। कला केवल सम्मोहित नही करती वह सौंदर्य के संसार में जगाती है। वह समय से साक्षात्कार कराती है।

निरपेक्षता को एक आस्था के रूप में स्वीकार किया है। इसके अतिरिक्त आधुनिकता को स्वयं भी एक मूल्य के रूप में भी मान लिया गया। आधुनिक कला पुरानी स्थापनाओं के आगे निकलकर नई तकनीकियों और दृश्य-श्रव्य साधनों के संपर्क से नए सौंदर्यशास्त्र के जन्म देना चाहती है। लगता है आगे चलकर यह सौंदर्यशास्त्र किसी एक व्यक्ति की प्रतिभा का परिणाम न हो कर एक सामूहिक कृति हो।

आर्नाल्ड गेहलन विश्व में जातीय बंधनों से दूर हटकर विभिन्न समाजों के परस्पर संबंधों को आधुनिकता के प्रत्यय के रूप में देखता है और जिआर्ज सिम्मल आधुनिकता को फैशन उत्पादों के वैश्विक प्रसार के रूप में भी देखता है। आधुनिकता की इन परिभाषाओं के स्वयं अपने खतरे हैं, उदाहरण के लिए जब हम आधुनिकता को ही आस्था के रूप में जीवनदृष्टि मान लेते हैं तो हम दृष्टि निरपेक्ष नहीं रह सकते। हम आधुनिकता के प्रति आग्रहशील हो जाते हैं। इसी प्रकार प्रगति को उसकी पर्यावरणीय कीमत के आकलन के बिना, एक मूल्य के रूप में स्वीकार करना, खतरनाक हो सकता है। यही बात बिना गुण-दोषों पर विचार किए फैशन के विश्वव्यापी प्रसार के लिए कही जा सकती है। सच तो यह है कि बिना गुण-दोषों का विचार किए, आधुनिकता के इनमें से किसी भी मूल्य को स्वीकार नहीं किया जा सकता। श्री नंद किशोर आचार्य (2001)अज्ञेय संचयिता की भूमिका में लिखते हैं कि आधुनिक लेखक और आधुनिकतावादी लेखक में एक फर्क यह भी है कि आधुनिकतावादी जहाँ परिस्थिति को ही सबकुछ मानकर उसके सम्मुख समर्पण को ही एक मात्र रास्ता मान लेता है, वहीं आधुनिक लेखक इतिहास की चुनौती को स्वीकार कर उसे एक रचनात्मक संभावना की तरह देखता है। कला के लिए भी यही सच है।

कला की मृत्यु

पश्चिम में पिछली दो सदी में अनेक मौतों की घोषणाएँ की गईं। इन मरने वालों में पहला ईश्वर था। फिर दर्शन, काव्य कला और अब आधुनिकता।

यहूदी मत में देवताओं और मनुष्यों की आकृतियों के निर्माण का निषेध किया गया है, क्योंकि यह एक प्रकार से ईश्वर के कार्य से बेहतर दिखाने की कोशिश होती है। कट्टर इसलाम में भी मूर्तिपूजा और चित्रकला का विरोध किया गया। कला यदि प्रकृति का अनुकरण ही है तब तो महात्मा गांधी का यह कथन सार्थक है जब उन्होंने कला को चुनौती देते पूछा कि जब मैं प्रकृति में बैठकर उसके मौलिक सौंदर्य का आनंद उठा सकता हूँ

MV July 2018 final for printing:Layout 1 6/22/2018 11:33 AM Page 25

तो मैं उसकी अनुकृतियों का क्यों देखूं? वाल्टर बेजामिन के लिए रूप और सौंदर्य की पूजा पेगानिज्म का आधुनिक रूपांतरण है। डेविड ह्यूम कला की उपयोगिता को लेकर प्रश्न करता है, जिसके उत्तर में एडमंड बर्क कहता है कि सुंदरता की उपयोगिता उसकी सुंदरता ही है। जॉन रस्किन सौंदर्य को सत्य मानने से इंकार करता है। वह वस्तु का गुण है जो हमें प्रभावित करता है। पर इन सारे विचारों से कला के अस्तित्व को वह चुनौती नहीं मिली, जो यंत्रों के महायुग के वर्तमान समय में उसे मिली है।

गियानी वात्तिमो (1991) लिखता है कि कला की मृत्यु का एक कारण जनसंचार के साधन हैं। कला की मृत्यु मास-मीडिया के हाथों हो चुकी है। जनसंचार माध्यम सौंदर्यबोध का साधारणीकरण करते हैं। प्रसार की गति धीमी हो तो समझ की संभावना बनी रहती है, पर बाढ़ आ जाय तो अच्छा-बुरा सब बह जाता है। यह आज कला में हो चुका है। इस काल में सेक्स और सेन्सुएलिटी कला के पर्याय बन चुके हैं। कला में स्वतंत्रता का अर्थ आज यही साधारणीकरण है। इस स्थिति को देखकर ही जार्ज आरबेाल ने लिखा होगा– *आल आर्ट इज प्रोपेगंडा*। दार्शनिक नीत्शे और मार्टिन हाईडगार के विचारों की बुनियाद पर गियानी वात्तिमो आधुनिकता के अंत की घोषणा अपनी पुस्तक *'द एंड ऑफ मॉडरनिटी'* में करते हैं। *जूलियट रेनाल्ड (2003)* अपनी पुस्तक इन *'द आइज ऑफ रसिक'* में रिचर्ड लेनाय को उद्धृत करते हुए लिखती हैं कि भारतीय कला और संस्कृति ऐंद्रिक है। फिर वे आगे लिखती हैं कि बॉलीवुड की फिल्मों ने इसे निगेटिव रूप में साकार कर दिया है। वे इसे कला के मूल उद्देश्यों से भटकाव के रूप में देखती हैं। मुल्कराज आनंद (1955) ने प्रोफेसर स्पियरमेन की मनोवैज्ञानिक प्रयोगशाला में 200 लोगों का कला की समझ की दृष्टि से अध्ययन किया तो पाया कि अधिकांश लोग केवल मनोरंजन और सज्जा के लिए पेंटिग खरीदते हैं।

कला की मृत्यु का दूसरा कारण यंत्रगुग का आगमन है। यंत्रयुग आ चुका है। पूंजीवाद उसी का परिणाम है। आज यंत्रों के सामने मनुष्य बौना हो गया है। आगे आने वाले समय में व्यक्ति और समाज दोनों मूल्यहीन हो जाएँगे। भविष्य की क्रांतियाँ अब समाज में नहीं वैज्ञानिक प्रयोगशालाओं में होंगी। प्रसिद्ध दार्शनिक गेहलन (1980) के अनुसार जीवन स्तर का उठना प्रगति को नहीं सीमाहीन असंतोष को जन्म देता है। उसके अनुसार उत्तर-ऐतिहासिकता एक ऐसी स्थिति का नाम है जिसमें

क्या यह आश्चर्यजनक घटना नहीं है कि द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद, जबकि घटनाक्रम इतनी तेजी से बदल रहा है, एक भी ऐसी बड़ी घटना नही है, जिसे इतिहास में महान् घटना के रूप में दर्ज किया जा सके और गांधी के बाद एक भी ऐसा पुरुष नहीं हुआ जिसे महानायक कहा जा सके। अब कला के तेजी से होते हुए परिवर्तन इतिहास की घटना नहीं बनेंगे।

प्रगति रुटीन हो जाएगी। साथ ही प्रकृति का नियंत्रण करने की मनुष्य की क्षमता भी उसी अनुपात में बढ़ जाएगी। एक समय ऐसा भी आएगा जब नयापन मूल्य के रूप में चुक जाएगा। बदलाव की रफ्तार इतनी तेज होगी कि मनुष्य के लिए उस पर ध्यान देना संभव नहीं होगा। इस प्रकार नवीनता भी एक मूल्य के रूप में समाप्त हो जाएगी। ऐसा नहीं है कि अच्छी कला और कृतियाँ नहीं रहेंगी। पर उन्हें ढूँढ पाना महासागर में मोती ढूँढ़ने के समान होगा। आर्नोल्ड गेहलन कहता है आने वाले समय में नवीनता के साथ किसी क्रांति का बोध जुड़ा हुआ नहीं होगा। परिवर्तन कपड़े, कार या मकान के मॉडल्स बदलने जैसे होंगे। क्या यह आश्चर्यजनक घटना नहीं है कि द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद, जबकि

MV July 2018 final for printing:Layout 1 6/22/2018 11:33 AM Page 26

घटनाक्रम इतनी तेजी से बदल रहा है, एक भी ऐसी बड़ी घटना नही है, जिसे इतिहास में महान् घटना के रूप में दर्ज किया जा सके और गांधी के बाद एक भी ऐसा पुरुष नहीं हुआ जिसे महानायक कहा जा सके। अब कला के तेजी से होते हुए परिवर्तन इतिहास की घटना नहीं बनेंगे। इस प्रगति का चूंकि कोई उद्देश्य नहीं होगा, क्योंकि नयापन अपने में एक उद्देश्य मान लिया गया है, इसलिए उसका कोई ऐतिहासिक मूल्य भी नही होगा। यह समय महापुरुषों का नहीं साधारण पुरुषों का होगा और यही साधारण पुरुषों के समूह सभी महत्त्वूपर्ण स्थितियों को हथिया लेंगे। ये साधारण पुरुष या उनके समूह प्रतिभा

तकनीकी विश्व की उपस्थिति के साथ ही अब पृथिवी पर मनुष्य के इतिहास का अंत हो गया है। तो अब आगे मशीनों के इतिहास लिखे जाएंगे। लोग मानव पीढ़ियों की नहीं, यंत्रों की पीढ़ियों की बातें करेंगे। संबंध भावुकतापूर्ण उपाश्रय हो जाएंगे और वे आदमी के सामान्य व्यवहार से बहिष्कृत हो जाएँगे। दुनिया चंद शीर्ष धनपतियों की होगी जो कंपनियों के मालिक होंगे और मनुष्य की व्यक्तिगत स्वतंत्रता का अंत हो जाएगा।

को खरीद लेंगे। जो उनके लिए दासी के समान व्यवहार करेगी। कला भी वही मूल्यवान होगी जिसका मोल दलाल तय कर ऊँचे दाम पर बिकवा देंगे।

जी-स्टेलः महायंत्रों का युग

हाईड्गर पहली बार तकनीकी विश्व रचना के लिए जी-स्टेल शब्द का प्रयोग करता है। तकनीकी विश्व की उपस्थिति के साथ ही अब पृथिवी पर मनुष्य के इतिहास का अंत हो गया है। तो अब आगे मशीनों के इतिहास लिखे जाएंगे। लोग मानव पीढ़ियों की नहीं, यंत्रों की पीढ़ियों की बातें करेंगे। संबंध भावुकतापूर्ण उपाश्रय हो जाएंगे और वे आदमी के सामान्य व्यवहार से बहिष्कृत हो जाएँगे। दुनिया चंद शीर्ष धनपतियों की होगी जो कंपनियों के मालिक होंगे और मनुष्य की व्यक्तिगत स्वतंत्रता का अंत हो जाएगा। कलतक आदमी राजाओं के व्यक्तिगत हितों के लिए कटता-मरता था। अब यह कंपनियों के लिए खटेगा-मरेगा। आदमी केवल धन कमाने का साधन होगा और धन का उपयोग नई कौशलपूर्ण मशीनों को ईजाद करने में होगा। मशीनों के सामने मनुष्य के हाथ-पैर बेकार हो ही चुके हैं। सड़कें अब पैदल चलने वालों से छिन ही चुकी हैं। कल जब सोचने वाले संगणक आ जाएंगे तो आदमी का दिमाग भी एक फालतू चीज हो जाएगा। इसकी अगली स्थिति यह होगी जब स्वचालित यंत्र, यंत्रों का उत्पादन करेंगे। यंत्रसत्ता स्वायत हो जाएगी और मानवश्रम मूल्यहीन होता जाएगा, यंत्र ही मनुष्य समाज का नियंत्रण करेंगे। यह यंत्रों का महायुग होगा। इसी के साथ मनुष्य के इतिहास का भी अंत हो जाएगा।

मनुष्यता का अंत

मैं कोई भविष्य कथन नहीं कर रहा हूँ। जो घटित हो चुका है, उसी के सामने से पर्दा हटा रहा हूँ। मनुष्यता मर चुकी है। उसकी मृत्यु को वैश्विक आतंकवाद के संदर्भ में समझा जा सकता है। अपने अस्तित्वमूलक कारणों के आधार पर मनुष्य भी मर चुका है। मनुष्य के पृथिवी पर अंत की सिर्फ औपचारिक घोषणा शेष है। वह भी आज करने वाला कोई नहीं है। किसी वस्तु का अस्तित्व और उसकी स्थिति अपने देश काल में होती है। अस्तित्व के लिए हर वस्तु की अपनी जगह अपना स्थान और अपनी पहचान जरूरी है। किंतु तकनीकी विकास के इस महायंत्रयुग में मनुष्य का व्यक्ति और समाज के रूप में अपना कोई देश और काल नहीं है। उसकी अपनी अलग जगह, समय और पहचान तीनों नष्ट हो गए हैं और इसी के साथ वह भी। उसके पास कला की बारीकियों को समझने के लिए इंद्रियों की जो संवेदनशीलता चाहिए और इस सब के लिए जो समय

MV July 2018 final for printing:Layout 1 6/22/2018 11:33 AM Page 27

चाहिए, आज वह उसके पास नहीं है।

उसने जब भी उसे कहीं देखा वही देखा
बिना समझे बिना परखे उसे सही देखा
समय उस पर नहीं था देखने परखने का
आँखें देखी
मगर आँखों को भीतर झाँक कर नहीं देखा।

कल तक जब समय था तो लोग रातों को रागों की रागदारी समझने में बिताते थे। सुनने वाले भी उतने ही गुणी थे। जो गाते थे, वे सुरों को सुरों में पिरोते जाते थे। रात-रात भर संगीत के रस, रंग में भीगते थे, भिगोते थे। भोर आते-आते जब वे भैरवी गाते थे, तो आकंठ सुर सुरसरी में डूब जाते थे। कलाकर केवल सही सुर साधने के लिए एक पूरा जीवन लगा देते थे। जब सुर की समझ आती थी तो गुरु के चरणों की धूल माथे से लगाते थे। धन्य हो जाते थे। आज सीखने-समझने के समय का अंत हो चुका है। कला आज कलाबाजी बन गई है। इसलिए समकालीन कला में कला का अंत हो चुका है। पर आज उसके पास पारिवारिक संबंधों को भी निभाने के लिए न साधन हैं, न समय। घर और गाँव, कभी मनुष्य के ये देशप्रत्यय थे। आज वे दोनों उसके पास नहीं है। घर टूट रहे हैं। गाँव छूट रहे हैं। *द एज ऑफ विलेज इज ओवर*। आज का समय आपसी मिलने-जुलने का नहीं रहा है। सामाजिक संबंध अब नाम मात्र के रह गए हैं। सामाजिकता मात्र औपचारिकता रह गई है। आज समाज मर चुका है। आज केवल दो तरह के लोग हैं। लूटने वाले और लुटने वाले। लूटती और लुटती लोगों की भीड़ को समाज नहीं कहा जा सकता। घर की बुनियाद पारिवारिक संबंधों पर टिकी थी, आज माँ-बाप अपने बच्चों के लिए भी समय नहीं दे पाते। संबंधों के निर्वाह के लिए पर्याप्त समय चाहिए, वह आज आदमी के पास नहीं है। इसलिए विवाह टूट रहे हैं।

तानव

पुराने समय में विवाह के मंत्रों में कहते थे– '*तव चित्तं मम चित्तम्।*' तब एकता का आधार आत्मा थी, मन था। पर अब विवाह का स्वरूप जैविक आवश्यकताओं की पूर्ति मात्र हो गया है और उसका आधार चित्त के स्थान पर वित्त हो गया है। मानव की पुरानी धारणा मन पर टिकी थी। मन-मनु-मानव। तकनीकी विश्व में तन पर आधारित इस नए मनुष्य का सही नाम दानव न सही पर तन-तनु-तानव होना चाहिए। तकनीकी विश्व में अब मानव नहीं तानव जन्म लेंगे। तकनीकी विश्व में आज

पुराने समय में विवाह के मंत्रों में कहते थे- '*तव चित्तं मम चित्तम्।*' तब एकता का आधार आत्मा थी, मन था। पर अब विवाह का स्वरूप जैविक आवश्यकताओं की पूर्ति मात्र हो गया है और उसका आधार चित्त के स्थान पर वित्त हो गया है। मानव की पुरानी धारणा मन पर टिकी थी। मन-मनु-मानव। तकनीकी विश्व में तन पर आधारित इस नए मनुष्य का सही नाम दानव न सही पर तन-तनु-तानव होना चाहिए।

जिस प्रकार मनुष्य तनावग्रस्त जीवन जीने के लिए निःसहाय रूप में नियतिबद्ध है, इस स्थिति में मनुष्य के लिए, मानव के स्थान पर *'तानव'* नाम अधिक उपयुक्त है। अस्तित्व केवल इच्छा से परिभाषित नहीं होता। इच्छा जीवमात्र की पहचान है। मनुष्य होने के लिए उसे अपने जीवन को अर्थ देना आवश्यक है। अर्थहीन जीवन निरर्थक है। अर्थ ही उसे पशुओं से अलग करता है।

मौतों की घोषणाओं का सच

सबसे महत्त्वपूर्ण समाजशास्त्र का प्रश्न यह है कि क्या मनुष्य का खोया देश-काल लौट सकता है? अपने देश-काल के साथ ही मानव लौट सकता है। साथ ही एक साथ ईश्वर, कला, दर्शन, इतिहास, और अंत में आधुनिकता की मौतों की दार्शनिकों द्वारा की गई घोषणाएँ

MV July 2018 final for printing:Layout 1 6/22/2018 11:33 AM Page 28

क्या नीत्शे और हुर्सल की उस दृष्टि का परिणाम नहीं हैं, जो पृथिवी का पश्चिमीकरण उसकी नियति मानते हैं। नीत्शे ने जब ईश्वर की मृत्यु की घोषणा की तो यह पश्चिम का यहूदी-ईसाई और यूनानी ईश्वर था। नीत्शे के इन विचारों से परवर्ती काल में यूरोप के लकां, फोकाल्ट, बार्थिस, दरिद, ल्योतार्द इत्यादि बड़ी संख्या में दार्शनिक प्रभावित हुए थे। जब मनुष्य ने कर्ता की सारी शक्ति स्वयं ही प्राप्त करली, तो ईश्वर का अंत स्वाभाविक था। ईश्वर की मृत्यु इसीलिए भी स्वाभाविक थी क्योंकि न केवल मनुष्य उसके समानांतर एक कर्ता बन चुका था, बल्कि इसलिए भी कि उसे किसी वस्तु

वैदिक सर्वास्तिवाद एक सत्ता की अनेकरूपता के सिद्धांत को स्थापति करता है। वह मूर्त और अमूर्त, प्रकृति और पुरुष दोनों की एकता स्थापित करता है। यह वैदिक सोच, आधुनिक विज्ञान के, अनकांशस-क्रिएटर, नॉन-लोकल साइबरनेटिक्स, नॉन इक्वीलिब्रियम-थर्मोडायनेमिक्स और सिस्टम्स कांसेप्ट के सिद्धांतों के अनुकूल है।

को समझने के लिए अथवा उसके ज्ञान के लिए, सदा ही उसके अंतिम कारणों को जानने की आवश्यकता नहीं रही थी। यूनानी दर्शन द्वैतवादी था। ईसाई दर्शन त्रैतवाद पर टिका था। जबकि यहूदी दर्शन मूलतः एक सत्तावादी था। ईश्वर का पश्चिमी सोच इसी घालमेल से बना था। इसलिए इस संशयवाद का अंत होना ही था। इसके विपरीत वैदिक सर्वास्तिवाद एक सत्ता की अनेकरूपता के सिद्धांत को स्थापति करता है। वह मूर्त और अमूर्त, प्रकृति और पुरुष दोनों की एकता स्थापित करता है। यह वैदिक सोच, आधुनिक विज्ञान के अनकांशस-क्रिएटर, नॉन-लोकल साइबरनेटिक्स, नॉन इक्वीलिब्रियम-थर्मोडायनेमिक्स और सिस्टम्स कांसेप्ट के सिद्धांतों के अनुकूल है। *फर्डिनांड डि सास्यूर* का संरचनावाद भर्तृहरि के ही समान पद के स्थान पर वाक्य की अर्थवत्ता की स्थापना करता है। आधुनिक विज्ञान में सिस्टम्स कांसेप्ट से इसे बल मिलता है। वैदिक पुरुष के सिद्धांत से भी इस विचार की समानता है जिसके अनुसार सृष्टि की विविधता आंगिक है, आवयविक नहीं।

यह पुरुष जब सृष्टि में अपना रूपांतरण करता है। तो देह, प्राण और मन के तीन बँधनों में बँध जाता है। पुरुष का सृष्टि में रूपांतर नियमों और नियति के बँधनों में बँधना है। सृष्टि का उत्तरोत्तर विकास चेतना का उत्तरोत्तर प्रगटीकरण है। अपने को नियमों के बंधनों से छुटकारा दिलाना है। यह मुक्ति मानव देह में ही संभव है। इसी देह में आत्मा अपनी मौलिक ईश्वरता, स्वतंत्रता और आनंद को फिर से पाती है। 'मनुष्य की ईश्वरता' और 'ईश्वर की मनुष्यता' ये दोनों सिद्धांत भारत में किसी को नहीं चोंकाते। भारतीय दर्शन मानव देह में ईश्वरता के अवतरण में दृढ़ आस्था रखता है।

जहाँ तक कला की मृत्यु का प्रश्न है, यह भी यूरोप के वैचारिक इतिहास के संकट की ही उपज है। प्रथमतः तो यहूदी-इस्लामिक दर्शन में कला को सम्मान की दृष्टि से देखा ही नहीं गया। फिर जब कला को अंततः स्वीकृति मिली भी तो भी वह यथार्थवादी सीमाओं से बंधी रही जिसे कैमरे के आविष्कार ने कमर से तोड़ दिया। पर मशीनी कला से केवल पश्चिम की यथार्थवादी कला को ही संकट हो सकता था। सर्रियलिस्ट कला भी दमित वासनाओं का ही रूपायन है। हाँ संचार माध्यमों में सस्ती और स्टंट कला के प्रचार-प्रसार से भारतीय और पश्चिमी दोनों प्रकार के कलारूपों को समान रूप से खतरा है। नीति और दर्शन की मृत्यु भी यूरोपीय इतिहास का अपना अनुभव है। इसका सामान्यीकरण किसी भी रूप में उचित नहीं।

उत्तरआधुनिकतावाद आज वित्तीय पूंजीवाद का

MV July 2018 final for printing:Layout 1 6/22/2018 11:33 AM Page 29

दार्शनिक उपकरण बन चुका है। इस दर्शन ने कला के क्षेत्र में दृष्टि की जगह बिखराव और विभ्रम को जन्म दिया है। एक और जहाँ यह दर्शन सांस्कृतिक बहुलता के सवर्णिम आदर्श की बात करता है, वहीं यह अराजकता और बिखराव से बचने का कोई रास्ता नहीं बताता। मैंने कई उत्तर आधुनिकतावादी लेखकों को आतंकवाद की वकालत करते देखा है। वित्तीय पूंजीवाद बड़े-बड़े पुरस्कारों के पैसे से लेखकों को खरीद लेता है और एन.जी.ओ का पौधा अपने हितों को साधने के लिए तैयार करता है। यह बात विचारणीय है कि यूरोप का कोई भी दर्शन क्यों न हो, उसकी परिणति अंततः किसी न किसी किस्म के अधिनायकवाद में क्यों होती है? मार्क्सवाद सर्वहारा के अधिनायकवाद की बात करता है। उसके सामने समता का मुखौटा है। तो यही काम जनतंत्र का मुखौटा लगाकर पूंजीवाद करता है। वह कोई बड़ी चुनौती सामने न आए इसलिए बड़ी राष्ट्रीयताओं में बिखराव के बीज बोता है। उन्हें तोड़ता है। मूल्यों का क्षरण होगा तो कलाओं का बचना भी संभव नहीं। पर प्रसद्धि बांसुरीवादक हरिप्रसाद चौरसिया को अभी भी विश्वास है कि भारत की शास्त्रीय और लोककलाएँ इस कालिमा को जीत लेंगी, क्योंकि कालापन ही सफेदी के पक्ष में स्वयं तर्क बन जाता है। पर आगे क्या होगा? निश्चयपूर्वक कहना कठिन है।

विष्णु सोया हुआ है।
नटराज नृत्य रत है
और बुद्ध ध्यानमग्न
और घर की दीवार घड़ी अभी भी घूम रही है।

लेखक अटल बिहारी वाजपेयी हिंदी विश्व विद्यालय, भोपाल के 'भारतीय विद्या अध्ययन एवं अनुसंधान केंद्र' के पूर्व निदेशक हैं।

संदर्भ

- अवनेर जिस 1977 फाउंडेशन्स ऑफ मार्क्सिस्ट एस्थेटिक्स, प्रोग्रेस पबिल्शर्स, मास्को।
- आर्नोल्ड गेहलन 1980। मैन इन द एज ऑफ टेकनालोजी, कोलम्बिया प्रेस, न्यूयार्क ।
- आर्थर पीकॉक 1986 गॉड एंड न्यू बायलाजी। जे. एम. संस लि. लंदन।
- फ्रिटजाफ कापरा 1996 द वेब ऑफ लाइफ, हार्पर एंड कॉलिंस।
- गजान माधव मुक्तिबोध 1993 नए साहित्य का सौंदर्यशास्त्र, राधाकृष्ण प्रकाशन प्रा. लिमिटेड।
- गियानी वात्तिमो 1991 द एंड ऑफ माडरनिटी, पोलिटी प्रेस-बलेकवैल पब्लिकेशन्स।
- ग्युला साक 1985 जिओर्जी ल्यूकास हिज लाइफ एंड वर्क्स, श्री सतगुरु पब्लिकेशन्स इंडिया।
- जूलियट रेनाल्ड्स 2003 इन द आइज ऑफ ए रसिक, ब्लू जे बुक्स, नई दिल्ली।
- लक्ष्मी सक्सेना 1990 सौंदर्यशास्त्र एक तत्त्व मीमांसीय अध्ययन, उत्तरप्रदेश हिंदी संस्थान।
- मकारोव ओ. ए. 1980 आर्ट एज एन आइडियोलाजिकल फिनामिनन, मार्क्सिस्ट-लेनिनिस्ट एस्थिटिक्स एंड आर्ट्स। प्रोग्रेस पब्लिशर्स। मास्को।
- माओत्से दुंग, प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली।
- मुल्कराज आनंद 1955 सेवन लिटिल नोन बड्र्स ऑफ इनर आई, चार्ल्स सी. ट्यूटल कंपनी ।
- नंद चतुर्वेदी 2001 भारतीयता की तलाश, मधुमती जनवरी-फरवरी
- नंदकिशोर आचार्य 2001 भूमिका, अज्ञेय संचयिका, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली
- श्री मेहेरबाबा 2001 गॉड स्पीक्स, मेहेर मौनवाणी पब्लिकेशन्स, हैदराबाद, इंडिया।
- निर्मल वर्मा 2002-03 संवाद, हिंदी इंडिया टुडे, वार्षिकी।
- प्रभाकर श्रोत्रिय 1982 संवाद, नई कविता, आलोचना और प्रतिक्रिया, राजपाल, नई दिल्ली।
- रमेश कुंतल मेघ, 2006 संस्कृति और सभ्यता के क्रोड में भविष्य की आलोचिंतना, प्रगतिशील वसुधा। जनवरी-फरवरी।
- विद्यानिवास मिश्र 2001-2002 कंसेप्चुअल प्रिमाइजेज ऑफ इंडियन एस्थिटिक्स। वाक् एंड रस। चिति वीथिका । इलाहाबाद म्यूजियम।

MV July 2018 final for printing:Layout 1 6/22/2018 11:33 AM Page 30

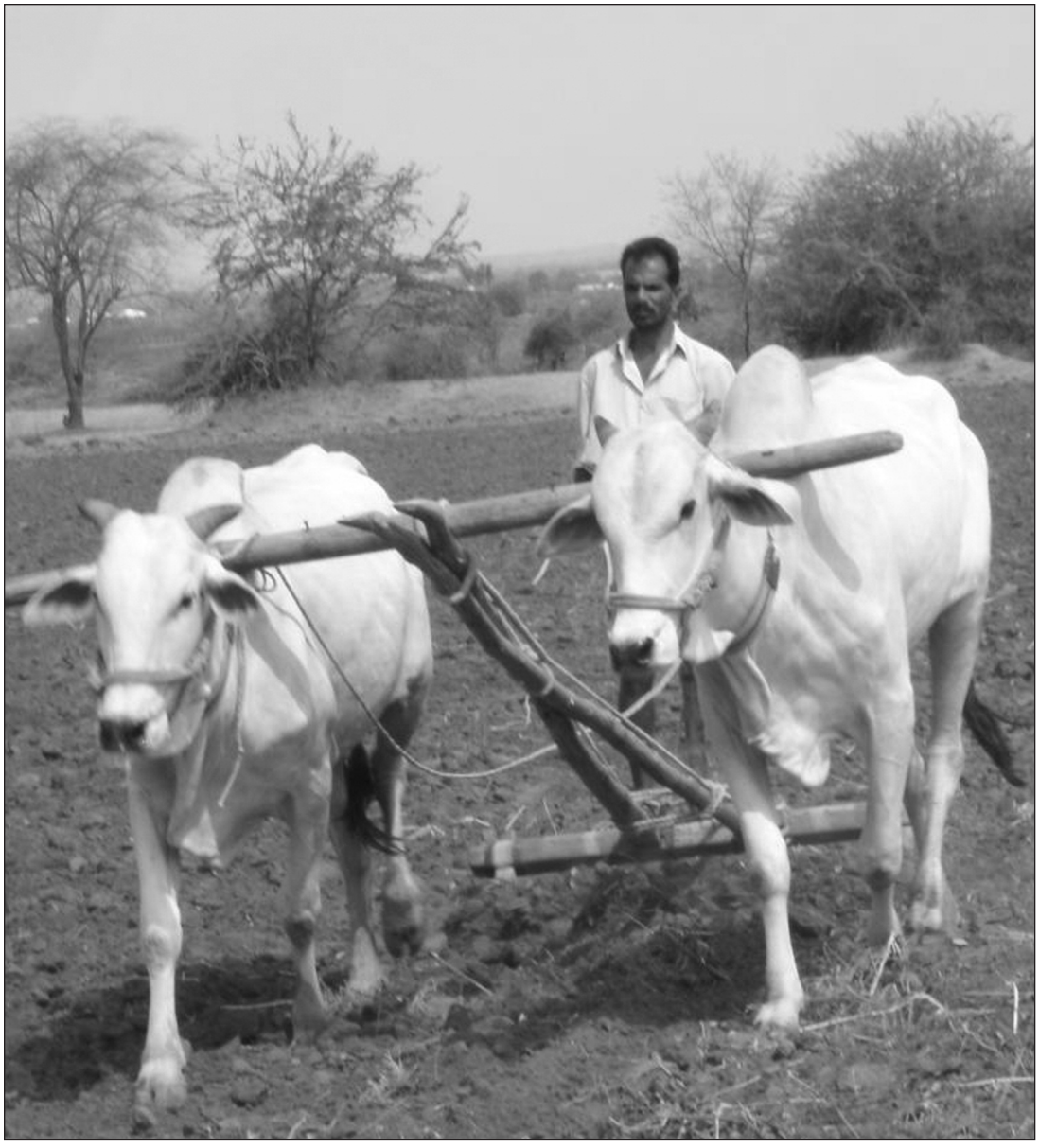

वैदिक काल से ही अपने देश में श्रम का महत्त्व है। शास्त्रों ने मनसा, वाचा, कर्मणा श्रम को जीवन का आधार बनाने की शिक्षा मनुष्यों को दी है। मनुष्यों ने भी परमेश्वर से कर्मशील जीवन प्रदान करने के लिए समय-समय पर प्रार्थनाएँ की हैं। श्रम के महत्त्व का उल्लेख करते हुए कहा गया है कि श्रमशील मनुष्य ही जीवन के माधुर्य को पाता है । सूर्य के श्रम से शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए जो सदैव चलता रहता है और कभी भी आलस्य नहीं करता । इसलिए निरंतर श्रम करने के लिए कहा गया है ।

MV July 2018 final for printing:Layout 1 6/22/2018 11:33 AM Page 31

ओम प्रकाश मिश्र

प्राचीन भारत में श्रम

भारतवर्ष में प्राचीन काल से ही उद्योग व व्यवसायों में संलग्न लोगों के विषय में उल्लेख वैदिक साहित्य में अनेक स्थलों पर उपलब्ध है। वेद मनुष्यों को शिक्षा दे रहा है कि जिस प्रकार से सनातन से विद्यमान, दिव्य शक्तियों से संपन्न सूर्य, चंद्र, वायु, अग्नि आदि देवता परस्पर अविरोध भाव से प्रेमपूर्वक अपने-अपने कार्य करते रहते हैं, वैसे ही तुम भी एक साथ कार्यों में प्रवृत्त होकर एक मत में रहो और परस्पर सद्भाव बरतो–

''संगच्छध्वं संवदध्वं सं वो मनांसि जानताम्।
देवाभागं यथा पूर्वे संजानाना उपासते।''

–ऋग्वेद, 10/191/2

वैदिक काल से ही अपने देश में श्रम का महत्त्व है। शास्त्रों ने मनसा, वाचा, कर्मणा श्रम को जीवन का आधार बनाने की शिक्षा मनुष्यों को दी है। मनुष्यों ने भी परमेश्वर से कर्मशील जीवन प्रदान करने के लिए समय-समय पर प्रार्थनाएँ की हैं। यजुर्वेद में कहा गया है कि हम उत्कृष्ट और शुभ जीवन के लिए उद्योगशील हों–

''उदायुषा स्वायुषोदस्थाम्''

–यजुर्वेद, 4/28

ऋग्वेद उपदेश देता है कि तुम्हारे अभिप्रायों में, तुम्हारे हृदयों में अथवा भावनाओं में और तुम्हारे मन में एकता की भावना रहनी चाहिए, जिससे तुम्हारी साधिक और सामुदायिक शक्ति का विकास हो–

समानो व आकूतिः समाना हृदयानि वः।
समानमस्तु वो मनो यथा वः सुसहासति।।

–ऋग्वेद, 10/191/4

'अथर्ववेद' भी इसी प्रकार मनुष्यों को संगठन का उपदेश देते हुए कहता है कि सभी लोग एक दूसरे से प्रेमपूर्वक सत्य, प्रिय एवं हितकर भाषण करते हुए आगे बढ़ें, परस्पर विरोध न करें, प्रत्युत् संगठित होकर शांति से रहें।

''मा वि योष्टा अन्यो अन्यस्मै वल्गु वदन्त एत''

–अथर्ववेद, 3/30/5

कौटिल्य के 'अर्थशास्त्र' में 'श्रेणी' को कर्मचारियों का समूह माना गया है। अन्य शास्त्रों में श्रेणी, पूग, वात एवं संघ शब्दों का प्रयोग इसी संदर्भ में किया गया है।

ऋग्वेद में परमेश्वर से ऐसी प्रेरणा प्रदान करने के लिए प्रार्थना की गई जिससे हमारा मन कल्याण मार्ग का अनुसरण करे।

''भद्रं नो अपि वातय मनः''

–ऋग्वेद, 10/20/1

MV July 2018 final for printing:Layout 1 6/22/2018 11:33 AM Page 32

अग्निदेव से भी उद्योगशील जीवन प्रदान करने के लिए प्रार्थना की गई है–

''कृषी न उर्ध्वाञ्चरथाय जीवसे''

–ऐतरेय ब्राह्मण, 2/2

भारतीय जीवन प्रणाली में आदिकाल से यह मान्यता है कि प्राणी जैसा संकल्प करता है, वैसा ही कर्म करता है। ऋग्वेद में भी कहा गया है कि जो श्रम नही करता उसके साथ देवता मित्रता नहीं करते।

''न ऋते श्रान्तस्य सख्याय देवाः।''

–ऋग्वेद, 4/33/11

श्रम के महत्त्व का उल्लेख करते हुए कहा गया है कि श्रमशील मनुष्य ही जीवन के माधुर्य को पाता है । सूर्य के श्रम से शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए जो सदैव चलता रहता है और कभी भी आलस्य नहीं करता । इसलिए निरंतर श्रम करने के लिए कहा गया है ।

चरन्वै मधुविन्दति चरन्स्वदुभुदुम्बरम् ।

''सूर्यस्य पश्य श्रेमाणं यो न तन्द्रयते चरंश्चैरवेति''

–ऐतरेय ब्राह्मण, 5

पाणिनि ने कठिन श्रम करने वालों को करमाकर कहा है (पाणिनी 3/2/22), द्रव्य अर्जन करने वाले कर्मचारियों को वैतनिक तथा कुशल कर्मचारियों को शिल्पी कहा गया है। शुक्राचार्य के अनुसार कर्मचारियों का वर्गीकरण मंद, मध्य और तीव्र तीन प्रकार किया गया है। इसी क्रम में उनका वेतन भी सम, मध्यम और श्रेष्ठ तीन प्रकार का था–

''मन्दो मध्यस्तथा शीघ्रस्त्रिविधो भृत्य उच्यते
समा मध्या च श्रेष्ठा च भृतिस्तेषां क्रमात् स्मृता ''

–शुक्रनीति ,2/386

प्राचीन ग्रंथों के अनुशीलन से यह पता चलता है कि अपने देश में कर्मचारियों का वर्गीकरण कार्य के अनुसार किया जाता था ।

प्राचीन ग्रंथों में वेतन के लिए 'भृति' शब्द का प्रयोग किया गया है। पाणिनी ने नियत सेवाओं के लिए नियत भुगतान शोधन को 'परिक्रयन' कहा है । पाणिनि के अनुसार मालिक 'परिक्रेत' करता और कार्य करने वाला व्यक्ति 'परिन' करता है।

वैदिक ग्रंथों में परिश्रम, अनुशासन तथा ईमानदारी द्वारा अर्जन करने पर बल दिया गया है। अनैतिकता द्वारा अर्जित द्रव्य दुःख का ही सृजन करता है । भारतीय संस्कृति में अर्थ की पवित्रता पर बहुत जोर दिया गया है। सच्चे परिश्रम और ईमानदारी से अर्जन करने को कहा गया है ।

जीवन निर्वाह के लिए ही धन की उपयोगिता थी और मनुष्य परिश्रम करके वेतन अर्जित करता था। प्राचीन काल में वेतन निर्धारित करने की तीन प्रकार की प्रणालियाँ थी –पहली प्रणाली में कार्य के अनुसार, दूसरी प्रणाली में समय के अनुसार और तीसरी प्रणाली में समय और कार्य दोनों को प्रमाण मानकर वेतन निश्चित किया जाता था।

''कार्यमाना कालमाना, कार्यकाल मितिस्त्रिधा।
भृतिरुक्ता तु तद्विज्ञैः सा देया भाषिता यथा ''

–शुक्रनीति 2/392

'तुम्हें यह कार्य करना होगा और इसके लिए तुम्हें इतना वेतन दिया जाएगा'। वेतन की इस प्रणाली को कार्यमान प्रणाली कहा जाता था–

''अयं भारस्त्वया तत्र स्थाप्यस्त्वैतावतींभृतिम्
दास्यामि कार्यमाना सा कीर्तिता तन्निदेशकैः''

– शुक्रनीति, 2/393

''वर्ष में, महीने में अथवा दिन में इतना वेतन दिया जाएगा'' इसे कालमान की प्रणाली कहा जाता था–

''वत्सरे वत्सरे वापि मासि मासि दिने दिने,
एतावतीं भृतिं ते अहं दास्यामीति च कालिका''

–शुक्रनीति, 2/377

''तुमने यह कार्य इतने समय में किया है, इसलिए इसका वेतन देंगे । इसकी कार्य और काल की प्रणाली कहा जाता था।''

MV July 2018 final for printing:Layout 1 6/22/2018 11:33 AM Page 33

''एतावता कार्यमिदं कालेनापित्वया कृतम्
भूतिमेतावतीं दास्ये कार्यकाल मिता च सा।''

–शुक्रनीति , 2/395

वाल्मीकि रामायण में भी कर्मचारियों से काम कराकर उन्हें उचित वेतन न देना जघन्य अपराध माना गया है।

''कारयित्वा महत्कर्म भर्ता भृत्यमनर्थकम्
अधर्मोयोऽस्य सोऽस्यास्तु यस्यार्योऽनुमतेः''

-वाल्मीकि रामायण , 2/75/23

कौटिल्य के अर्थशास्त्र में वेतन भुगतान के अनेक व्यावहारिक नियम उल्लिखित हैं।

महाभारत में इस बात का उल्लेख है कि कर्मचारियों का वेतन नियमित रूप से दिया जाए। शुक्राचार्य ने पारितोषिक या पुरस्कार का भी उल्लेख किया है । कर्मचारियों तथा श्रमिकों के काम और गुणों को देखकर उनके वेतन और भत्ते में वृद्वि अथवा कटौती कर दी जाती थी ।

मौर्य काल में नगरपालिका औद्योगिक कला संबंधी सभी कार्यों की व्यवस्था करती थी। नगरपालिका कर्मचारियों के वेतन निर्धारण के लिए उत्तरदायी थी ।

भारतवर्ष में प्रचलित संयुक्त परिवार प्रणाली सामाजिक सुरक्षा का एक सुव्यस्थित साधन थी । संयुक्त परिवार के अतिरिक्त समाज में भी इसका पूर्ण ध्यान रखा जाता था कि आवश्यकता पड़ने पर दूसरों की सहायता अविलंब की जाए। इस प्रकार की मान्यता थी कि प्रत्येक व्यक्ति चार ऋण लेकर पैदा होता है। वह देवताओं, ऋषियों, पितरों और मनुष्यों का ऋणी होता था।

एक दूसरे की रक्षा करना और सहायता करना ऋग्वेद में भी मनुष्यों का प्रथम कर्तव्य माना गया है ।

''पुमान् पुमांसं परिपातु विश्वतः ''

–ऋग्वेद , 6/75/14

महाभारत के अनुसार अपंग व असहाय व्यक्तियों के भरण-पोषण का उत्तरदायित्व राजा पर होता था–

''काश्चिदन्धांश्चमूकांश्च पङ्गून व्यंगानबांधवान्
पितेव पासि धर्मज्ञ तथा प्रव्राजितानपि''

–महाभारत सभापर्व , 124

वैदिक काल में यदि ग्रामों में या नगरों में औद्योगिक विवाद का कोई प्रश्न आता था तो समस्या सुलझाने के लिए मध्यमासी के पास स्वेच्छापूर्वक दोनों पक्ष प्रस्तुत करते थे। मध्यमासी संभवतः समाज में प्रभावशाली व्यक्ति होते थे । समाज सभी विवादों के स्वतः सुलझाने में समर्थ था। समाज की न्याय व शासन व्यवस्था थी । जिस विवाद का हल पंचायत द्वारा नहीं हो पाता था, उस पर राजा द्वारा नियत किया हुआ बोर्ड निर्णय देता था ।

कौटिल्य के अर्थशास्त्र में वेतन भुगतान के अनेक व्यावहारिक नियम उल्लिखित हैं। महाभारत में इस बात का उल्लेख है कि कर्मचारियों का वेतन नियमित रूप से दिया जाए। शुक्राचार्य ने पारितोषिक या पुरस्कार का भी उल्लेख किया है । कर्मचारियों तथा श्रमिकों के काम और गुणों को देखकर उनके वेतन और भत्ते में वृद्वि अथवा कटौती कर दी जाती थी ।

''विचार्य्य श्रेणिभिः कार्य कुलेर्यन्न विचारितम्
गणैश्च श्रेण्याविज्ञातं गणाज्ञातं नियुक्त कैः ।।''

–शुक्रनीति ,4/5/31

धर्मशास्त्रों ने एक मत से यह भी स्वीकार किया है कि विवादों के द्वारा विवाद कभी शांत नहीं होते वरन् मैत्रीपूर्ण व्यवहार से ही शांत हो सकते हैं ।

इस प्रकार हमें स्पष्ट होता है कि प्राचीन भारत में वैदिक काल से लेकर युगों तक श्रम के प्रति सम्मान का भाव भारतीय समाज में रहा। श्रम को उत्पादन का एक उपादान मात्र नहीं समझा जाता था, वह समस्त राष्ट्र जीवन का एक अत्यंत महत्त्वपूर्ण तत्त्व था।

लेखक इलाहाबाद उच्च न्यायालय में अधिवक्ता हैं।

MV July 2018 final for printing:Layout 1 6/22/2018 11:33 AM Page 34

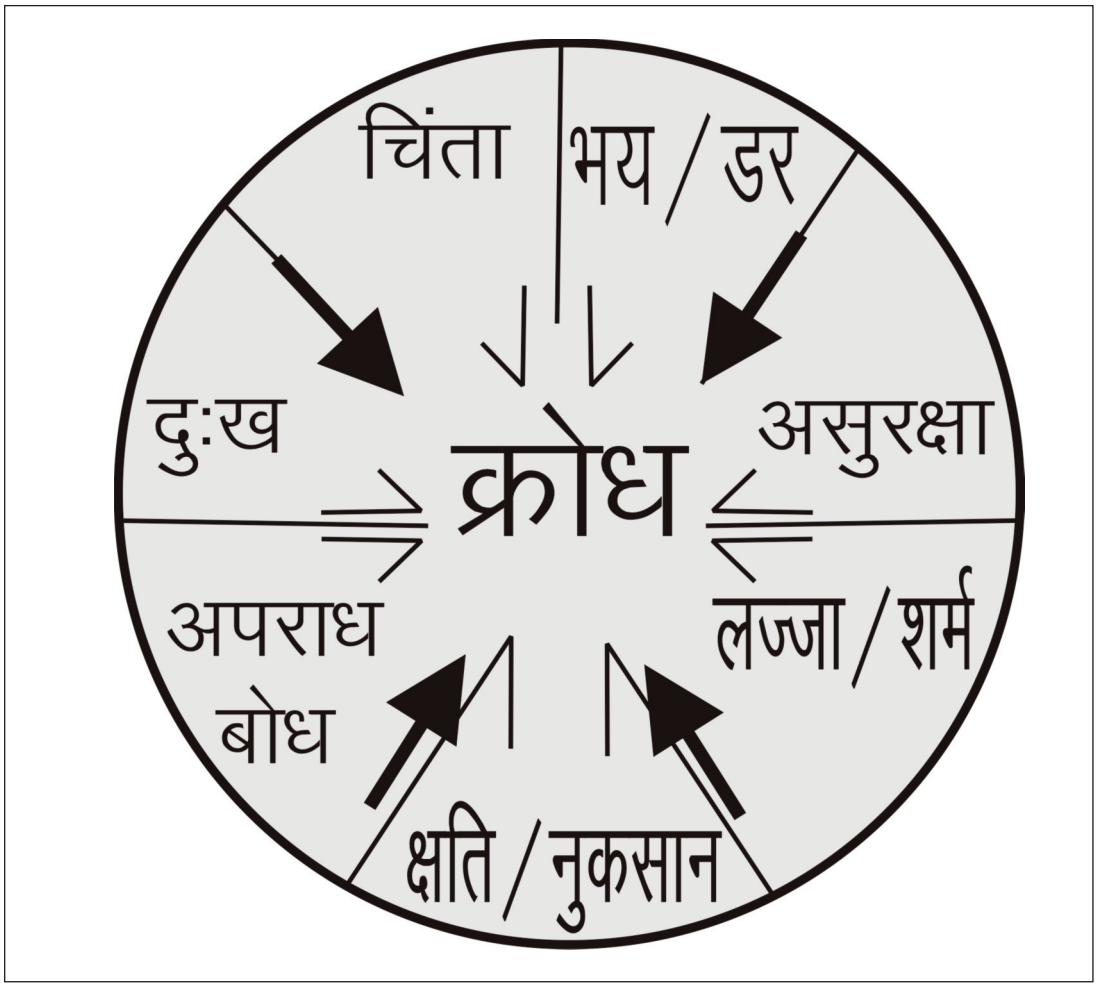

क्रोध एक मनोविकार है अर्थात् व्यक्ति का मन जब किसी कारण से क्षुब्ध होता है या आवेश आता है तो वह क्रोधित हो जाता है। देखा जाए तो प्राणी जगत् में क्रोधित होना एक स्वाभाविक प्रक्रिया है। कई बार आपने पशु-पक्षियों को भी क्रोधित हो कर दूसरों पर हमला करते हुए देखा होगा। प्राणी जगत् की इसी प्रकृति के कारण व्यक्ति भी मन के क्षुब्ध होने पर आक्रामक हो जाता है। लेकिन वास्तविकता यह है कि इससे ज्यादा क्षति उसी की होती है और उसकी लक्ष्य प्राप्ति बाधित हो जाती है। इसीलिए कहा जाता है कि क्रोध पर नियंत्रण करना किसी यज्ञ से कम नहीं। प्राणी जगत् में केवल मानव ही है जो क्रोध पर नियंत्रण कर सकता है। क्रोध पर नियंत्रण करने की मानव की यही क्षमता शेष प्राणी जगत् से अलग कर उसे श्रेष्ठ बनाती है। क्रोध क्यों आता है, क्या जीवन में प्रसन्नता व सफलता दोनों के लिए ही क्रोध का रूपांतरण आवश्यक है, इस गहन विषय पर बहुत ही सरल शब्दों में चर्चा कर रहे हैं मनोवैज्ञानिक विषयों के सफल लेखक सीता राम गुप्ता –

MV July 2018 final for printing:Layout 1 6/22/2018 11:33 AM Page 35

सीता राम गुप्ता

क्रोध का रूपांतरण

क्रोधावस्था में व्यक्ति का संकल्प क्षीण हो जाता है जिससे सफलता संदिग्ध हो जाती है। क्रोध की अवस्था में व्यक्ति भूल जाता है कि उसे क्या करना है और उसकी भूल का क्या परिणाम होगा। क्रोधावस्था में व्यक्ति के मस्तिष्क की कोशिकाएँ जो संकल्प की पूर्णता के लिए अपेक्षित स्थितियों का निर्माण करती हैं अपेक्षित मानसिक व भौतिक स्थितियों का निर्माण करने में सक्षम नहीं रह पाती हैं। क्रोध विवेक को नष्ट कर देता है और विवेक के अभाव में मनुष्य पशु के समान आचरण करने लगता है। वह न केवल दुर्वचनों का सहारा लेने लगता है अपितु हिंसा से भी परहेज नहीं करता।

महर्षि विश्वामित्र एक यज्ञ कर रहे थे लेकिन राक्षस उसमें निरंतर व्यवधान उत्पन्न कर रहे थे। अतः महर्षि विश्वामित्र राजा दशरथ के दरबार में पहुँचे और उनसे उनके ज्येष्ठ पुत्र राम को उनके साथ भेजने का आग्रह किया ताकि राम राक्षसों का वध कर दें और यज्ञ निर्विघ्न सम्पन्न हो सके। यह सुनकर राजा दशरथ बहुत परेशान हो गए क्योंकि वो राम को बहुत स्नेह करते थे और किसी भी स्थिति में पल भर के लिए भी उन्हें अपने से दूर नहीं करना चाहते थे। राजा दशरथ ने राम को भेजने की अपेक्षा स्वयं अपनी सेना सहित उनके साथ चलने को कहा, लेकिन महर्षि विश्वामित्र ने कोई प्रतिक्रिया व्यक्त नहीं की। स्वाभाविक है महर्षि को बहुत क्रोध आ रहा था लेकिन वे अपने क्रोध को व्यक्त नहीं कर रहे थे।

महर्षि विश्वामित्र को अपने यज्ञ के नियम ज्ञात थे। उन्हें पता था कि क्रोध करने पर यज्ञ खंडित हो जाता है, अनुष्ठान अधूरा रह जाता है। वास्तव मे क्रोध पर विजय पाना भी किसी यज्ञ से कम नहीं।

MV July 2018 final for printing:Layout 1 6/22/2018 11:33 AM Page 36

किसी आयोजन की सफलता के लिए ही नहीं जीवन के हर क्षेत्र में सफलता प्राप्त करने के लिए क्रोध का त्याग अनिवार्य है। जीवन के किसी भी क्षेत्र में लक्ष्यपूर्ति में यदि सबसे बड़ी बाधा है तो वो क्रोध ही है। छोटी-छोटी बातों पर बार-बार क्रोध करने वाला व्यक्ति किसी भी महत्त्वपूर्ण कार्य को न तो समग्र व संपूर्ण रूप से कर पाता है और न अपेक्षित समय सीमा के अंदर ही कर पाता है। जो व्यक्ति जीवन में आशातीत सफलता प्राप्त करते हैं वे महत्त्वहीन बातों पर बार-बार क्रोध नहीं करते। वास्तव में जो व्यक्ति क्रोध नहीं करते वे ही जीवन में आशातीत सफलता और समृद्धि ही नहीं यश, प्रतिष्ठा व लोगों का प्यार भी सहज ही पा लेते हैं।

क्रोध पर विजय पाना भी किसी यज्ञ से कम नहीं। किसी आयोजन की सफलता के लिए ही नहीं जीवन के हर क्षेत्र में सफलता प्राप्त करने के लिए क्रोध का त्याग अनिवार्य है। जीवन में लक्ष्यपूर्ति में यदि सबसे बड़ी बाधा है तो वो क्रोध ही है। छोटी-छोटी बातों पर बार-बार क्रोध करने वाला व्यक्ति किसी भी महत्त्वपूर्ण कार्य को समग्र व संपूर्ण रूप से नहीं कर पाता है।

क्रोध की अवस्था में ऐसा व्यक्ति क्रोध के साथ-साथ अन्य अवगुणों का सहारा लेने के लिए भी विवश हो जाता है। क्रोध की अवस्था में व्यक्ति का अपनी भाषा पर नियंत्रण नहीं रह पाता। वह शिष्टाचार की सारी सीमाएँ लाँघ जाता है और असभ्य व अश्लील भाषा का प्रयोग करने लगता है। उसका विवेक नष्ट हो जाता है जिससे रिश्तों की मर्यादा भी तार-तार हो जाती है। क्रोधी व्यक्ति जानता ही नहीं कि क्या कथनीय है और क्या अकथनीय है अथवा क्या उचित कार्य है व क्या उचित कार्य नहीं है। क्रोधाधिक्य में वह हत्या तक कर डालता है और अपना ही नहीं कई परिवारों का जीवन नष्ट कर डालता है। क्रोध की अवस्था में ऐसा क्यों होता है? इसके लिए शरीर पर क्रोध के रासायनिक प्रभाव को समझना होगा।

क्रोध की अवस्था में व्यक्ति के जो मनोभाव होते हैं उनके कारण व्यक्ति के शरीर में स्थित अंतःस्रावी ग्रंथियों से ऐसे हार्मोंस उत्सर्जित होकर रक्त में मिल जाते हैं जो हमारे शरीर के लचीलेपान को समाप्त कर उसे कठोर बना डालते हैं। इससे हम अपनी मांसपेशियों और अंगोपांगों पर नियंत्रण खो बैठते हैं। चेहरा तमतमाने लगता है। उसकी स्थिति घोर अनावृष्टि की स्थिति में सूखी धरती पर उगे किसी नाजुक से पौधे जैसी हो जाती है। कई बार रक्तचाप भी बहुत अधिक बढ़ जाता है और हृदयाघात अथवा मस्तिष्काघात तक हो जाता है। ऐसी अवस्था में व्यक्ति न तो अपने शरीर पर ही नियंत्रण रख पाता है और न अपने मनोभावों पर ही। क्रोध जिस क्षण व्यक्ति के मस्तिष्क पर अपना अड्डा जमा लेता है व्यक्ति उसी क्षण विवेक व विचारशक्ति से शून्य हो जाता है। विवेक व विचारशक्ति के अभाव में कोई कैसे सही निर्णय ले सकता है? इसका सीधा सा प्रभाव व्यक्ति की रचनात्मकता पर पड़ता है।

किसी भी कार्य की सफलता उसके संकल्प पर निर्भर करती है। क्रोधावस्था में व्यक्ति का संकल्प क्षीण हो जाता है जिससे सफलता संदिग्ध हो जाती है। क्रोध की अवस्था में व्यक्ति भूल जाता है कि उसे क्या करना है और उसकी भूल का क्या परिणाम होगा। क्रोधावस्था में व्यक्ति के मस्तिष्क की कोशिकाएँ जो संकल्प की पूर्णता के लिए अपेक्षित स्थितियों का निर्माण करती हैं अपेक्षित मानसिक व भौतिक स्थितियों का निर्माण करने में सक्षम नहीं रह पाती हैं। क्रोध विवेक को नष्ट कर देता है और विवेक के अभाव में मनुष्य पशु के समान आचरण करने लगता है। वह न केवल दुर्वचनों का सहारा लेने लगता है अपितु हिंसा से भी परहेज़ नहीं करता। किसी भी सर्जनात्मक कार्य के दौरान व्यक्ति को

MV July 2018 final for printing:Layout 1 6/22/2018 11:33 AM Page 37

क्रोध नहीं आता अतः क्रोध से बचे रहने के लिए सर्जनात्मकता का विकास सहायक हो सकता है। एक क्रोधी व्यक्ति युद्ध के मैदान में ही नहीं जीवन के मैदान में भी पराजित होता है अतः रचनात्मक कार्यों द्वारा क्रोध का उपचार अनिवार्य है।

प्रकृति में ही नहीं भौतिक जगत में भी सर्वत्र विविधता और विषमता विद्यमान है। रंग-रूप, आर्थिक स्थिति और बौद्धिक स्तर सब में असमानता व्याप्त है। इस विविधता और असमानता के कारण विचारों में भी मतभेद स्वाभाविक है। कई बार यह मतभेद विरोध का रूप ले लेता है तथा विरोध क्रोध के रूप में प्रकट होने लगता है। जैसा कि गीता में लिखा है 'कामात्क्रोधोऽभिजायते' अर्थात् काम अथवा कामना में विघ्न पड़ने से क्रोध उत्पन्न होता है और

क्रोधाद्भवति सम्मोहः सम्मोहात्स्मृतिविभ्रमः।
स्मृतिभ्रंशाद् बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात्प्रणश्यति।।

अर्थात् क्रोध से मूढ़भाव अथवा मोह उत्पन्न होता है और मोह से स्मरणशक्ति भ्रमित हो जाती है। स्मरणशक्ति के भ्रमित हो जाने से बुद्धि अर्थात् ज्ञानशक्ति का नाश हो जाता है और बुद्धि नष्ट होने से मनुष्य अपनी स्थिति से गिर जाता है। अतः क्रोध मनुष्य का सबसे बड़ा शत्रु है। क्रोध से बचना अनिवार्य है लेकिन क्या ये संभव है?

जैसा कि कहा गया है 'कामात्क्रोधोऽभिजायते' अर्थात् काम से ही क्रोध की उत्पत्ति होती है, लेकिन न तो काम की ही उपेक्षा की जा सकती और न कामनाओं का त्याग ही संभव है। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष ये चारों पुरुषार्थ अनिवार्य माने गए हैं। इन्हीं चारों की प्राप्ति के लिए कामनाओं के वशीभूत परिस्थितियाँ भी हमें विवश कर देती हैं क्रोध करने के लिए। बिना क्रोध के कई बार हमारी सही बात को भी कोई सुनने को तैयार नहीं होता, लेकिन इस सब के बावजूद क्रोध हानिकारक है। जिस प्रकार धर्म, अर्थ और काम में संतुलन अनिवार्य है, काम की एक सीमा निर्धारित है क्रोध की भी एक सीमा अनिवार्य है। घातक क्रोध नहीं अपितु क्रोधाधिक्य है लेकिन क्या हम क्रोध करना जानते हैं? अरस्तू कहते हैं कि कोई भी व्यक्ति क्रुद्ध हो सकता है लेकिन सही समय पर, सही मात्रा में, सही स्थान पर, सही उद्देश्य के लिए तथा सही तरीके से क्रुद्ध होना सबके सामर्थ्य की बात नहीं। अरस्तू के इस कथन में ही छुपा है क्रोध का कारण और निवारण।

क्रोध का सीधा संबंध हमारे मनोभावों से है। एक तरफ जहाँ हमारे मनोभाव क्रोध उत्पन्न करते हैं, वहीं क्रोध के कारण मनोभाव दूषित भी हो जाते हैं और

प्रकृति में ही नहीं भौतिक जगत में भी सर्वत्र विविधता और विषमता विद्यमान है। रंग-रूप, आर्थिक स्थिति और बौद्धिक स्तर सब में असमानता व्याप्त है। इस विविधता और असमानता के कारण विचारों में भी मतभेद स्वाभाविक है। कई बार यह मतभेद विरोध का रूप ले लेता है तथा विरोध क्रोध के रूप में प्रकट होने लगता है।

दूषित मनोभावों के कारण शरीर रुग्ण तथा बुद्धि विकृत हो जाती है। क्रोध के अनेकानेक कारण हो सकते हैं पर मुख्य कारण है भावों में नकारात्मकता। किसी भी प्रकार की नकारात्मकता ही क्रोध उत्पन्न करती है तथा नकारात्मक भावों अथवा नकारात्मक भावों से उत्पन्न क्रोध के कारण शरीर में घातक रसायनों का उत्सर्जन होता है जो हमारी अनेक शारीरिक व्याधियों के लिए उत्तरदायी हैं। व्याधियुक्त व्यक्ति चिड़चिड़ा और अधिक क्रोधी हो जाता है। वस्तुतः क्रोध के रूप में, मन में व्याप्त नकारात्मक भावों का ही विसर्जन होता है जो अनिवार्य है। क्रोध का उत्पन्न होना और उसका प्रकटीकरण अत्यंत स्वाभाविक है, अतः क्रोध को

MV July 2018 final for printing:Layout 1 6/22/2018 11:33 AM Page 38

दबाना भी अत्यंत घातक है क्योंकि यह अनेकानेक मनोरोगों को जन्म देने वाला है। क्रोध की समाप्ति असंभव है अतः उसको नियंत्रित कर उसका रूपांतरण कर हम उसके घातक प्रभाव से बच कर व्याधिमुक्त जीवन अवश्य व्यतीत कर सकते हैं।

क्रोध का कोई न कोई कारण अवश्य होता है। यदि इस कारण को समझ लिया जाए तो क्रोध का समाधान सरलता से किया जा सकता है तथा क्रोध आने पर उससे आसानी से निपटा जा सकता है। यदि आप किसी को कोई कार्य सौंपते हैं और वह आपकी अपेक्षा के अनुसार कार्य नहीं करता अथवा समय पर नहीं करता तो क्रोध स्वाभाविक है लेकिन क्रोध करने से दूसरा

क्रोध का कोई न कोई कारण अवश्य होता है। यदि इस कारण को समझ लिया जाए तो क्रोध का समाधान सरलता से किया जा सकता है। यदि आप किसी को कोई कार्य सौंपते हैं और वह आपकी अपेक्षा के अनुसार कार्य नहीं करता तो क्रोध स्वाभाविक है लेकिन क्रोध करने से दूसरा व्यक्ति आपकी इच्छानुसार कार्य कर पाए यह जरूरी तो नहीं। यहाँ स्थितियों में परिवर्तन करना अनिवार्य है।

व्यक्ति आपकी इच्छानुसार कार्य कर पाए यह जरूरी तो नहीं। यहाँ स्थितियों में परिवर्तन करना अनिवार्य है। स्वयं उस कार्य को पूर्ण करने के लिए तत्पर और अग्रसर हो जाइये। कार्य पूर्ण होने पर जो संतुष्टि मिलेगी उससे क्रोध स्वतः समाप्त हो जाएगा। क्रोध से बचने के लिए या तो असीम धैर्य उत्पन्न कीजिए अथवा दूसरों से अपेक्षा करना छोड़ दीजिए। जो हो रहा है जिस ढंग से हो रहा है उसे स्वीकार कीजिए अथवा स्वयं आगे बढ़कर हर काम को अपने हाथों में ले लीजिए। हर कार्य को स्वयं करना संभव नहीं अतः अपने दृष्टिकोण में परिवर्तन अनिवार्य है। जब बाकी लोग कुछ विशेष स्थितियों में क्रोधित नहीं होते तो आप क्यों हो रहे हैं? यह प्रश्न विचारणीय है। इन्हीं प्रश्नों के उत्तर में छिपा है क्रोध का समाधान। क्रोध के दुष्प्रभाव से बचने अथवा उसका रूपांतरण करने के कुछ उपाय देखिए–

- क्रोध की अवस्था मे क्रोध की तीव्रता को यथासंभव कम करने का प्रयास कीजिए। क्रोध आने की अवस्था में फौरन प्रतिक्रिया न करें अपितु थोड़ा समय बीत जाने दें। इससे क्रोध की तीव्रता भी कम हो जाएगी और कुछ देर बाद आप अपनी बात भी पूरी शिद्दत से संतुलित रूप में रख सकेंगे।
- कई बार हमें पता चल जाता है कि क्रोध आने वाला है और ऐसी स्थिति में हम उसको रोक सकते हैं या कम से कम नियंत्रित अवश्य कर सकते हैं लेकिन हमारे अंदर एक भाव ये भी काम करता है कि यदि इसी समय उचित उत्तर नहीं दिया गया तो लोग मुझे कमजोर समझेंगे। वास्तव में क्रोध करना कमजोरी है, न कि उसको नियंत्रित या स्थगित करना। उचित उत्तर तो क्रोध को नियंत्रित करके ही दिया जा सकता है।
- क्रोध आने पर स्वयं का अवलोकन करें। क्रोध क्यों उत्पन्न हो रहा है तथा कैसे उत्पन्न हो रहा है और इसका शरीर और मन पर क्या प्रभाव पड़ रहा है इसको खोजने का प्रयास करें। इस प्रयास में क्रोध धीरे-धीरे स्वतः समाप्त हो जाएगा। यह क्रोध का रूपांतरण है। एक नकारात्मक भाव अथवा विकृत मनोभाव को ध्यानावस्था में बदलने की प्रक्रिया है।
- ध्यान को क्रोध के स्थान अथवा वस्तु से हटाकर अन्यत्र ले जाने का प्रयास करें। इसके लिए आँखें बंद करके पहले खूब गहरे-गहरे साँस लेने और छोड़ने का अभ्यास करें। फिर ध्यान को साँसों के आवागमन का अवलोकन करने पर लगा दें और

MV July 2018 final for printing:Layout 1 6/22/2018 11:33 AM Page 39

तत्पश्चात किसी ऐसी वस्तु अथवा स्थान पर जो आपको अच्छी लगती हो। ध्यान द्वारा क्रोध के रूपांतरण की ही प्रक्रिया है यह।

- क्रोध के दुष्प्रभाव से बचने के लिए क्रोध के स्थान अथवा व्यक्ति से दूर चले जाना भी एक तरीका है। या तो स्थान बदलें या मन के भाव। मन को क्रोध के उद्‌गम से अन्यत्र कहीं दूर ले जाएँ। जिन स्थानों पर अथवा जिन परिस्थितियों में क्रोध उत्पन्न होता है उनसे यथासंभव बचने का प्रयास करें।
- क्रोध को किसी व्यक्ति पर उतारने की बजाय किसी भौतिक वस्तु पर उतार दीजिए। कई व्यक्ति क्रोध की अवस्था में तोड़-फोड़ करते देखे जा सकते हैं। किसी व्यक्ति को शारीरिक क्षति पहुँचाने से अच्छा है कोई कप या गिलास तोड़ डालिए।
- कई बार मोहवश हम घर की पुरानी तथा बेकार चीजों को एकत्र करते रहते हैं। जब हम गुस्से या घृणा की अवस्था में होते हैं तो किंचित निर्मम हो जाते हैं। ऐसी अवस्था में बेकार चीजों के प्रति मोह कुछ हद तक कम हो जाता है जिससे अनुपयोगी तथा बाधा डालने वाली वस्तुओं से छुटकारा पाना सरल हो जाता है। बेकार की चीजों को तोड़ने-फोड़ने अथवा कागजों को फाड़कर फेंकने की प्रक्रिया में गुस्सा और घृणा जैसे मनोभाव भी तरल होकर तिरोहित हो जाते हैं।
- क्रोध प्रकट करने कर एक तरीका है अवसरानुकूल कोई छंद, दोहा, लोकोक्ति अथवा चुटकुला सुनाना। इससे आपका क्रोध भी शांत हो जाएगा और अगले पर प्रकट भी।
- यदि हम किसी घटना से क्षुब्ध हैं तो क्रोध करने की बजाय उस घटना पर कुछ लिखना, कार्टून व चित्रादि बनाना अथवा अन्य रचनात्मक कार्य करना लाभदायक होगा। आज हम वैचारिक विभिन्नता के कारण किसी का कत्ल तक कर डालते हैं। इससे पता चलता है कि हममें कॉमन सेंस ही नहीं रचनात्मकता का भी अभाव है।
- जो व्यक्ति जितना अधिक सर्जनात्मक होगा उतना ही शांत होगा और शांत व्यक्ति को क्रोध कहाँ? स्वयं को व्यस्त रखिए और अपनी सर्जनात्मकता का निरंतर विकास करते रहिए। नए-नए विषयों और कलाओं पर हाथ आजमाएँ। स्वाध्याय, पठन-पाठन, लेखन, संगीत आदि सब आपके क्रोध को रचनात्मकता में परिवर्तित कर देंगे।
- हास्य में न केवल उपचारक शक्ति होती है अपितु

जो व्यक्ति जितना अधिक सर्जनात्मक होगा उतना ही शांत होगा और शांत व्यक्ति को क्रोध कहाँ? स्वयं को व्यस्त रखिए और अपनी सर्जनात्मकता का निरंतर विकास करते रहिए। नए-नए विषयों और कलाओं पर हाथ आज़माएँ। स्वाध्याय, पठन-पाठन, लेखन, संगीत आदि सब आपके क्रोध को रचनात्मकता में परिवर्तित कर देंगे।

हास्य क्रोध से भी दूर रखता है। क्रोध से बचने के लिए हास्य फिल्में देखना, हल्का-फुल्का मनोरंजक या प्रेरणास्पद साहित्य पढ़ना भी अच्छा है।

- क्रोध की अवस्था में पानी पीना, गिनती गिनना या उलटी गिनती गिनना या कोई कविता दोहराना भी अच्छा उपचार है।

यदि हम ध्यानपूर्वक देखें तो सभी उपाय कमोबेश एक ही तत्त्व पर आधारित हैं और वह है ध्यान का परिवर्तन। क्रोध की अवस्था में हम प्रायः एक गिलास ठंडा पानी पीने पर जोर देते हैं। लोग ऐसा करते भी हैं। आखिर क्यों? क्या पानी में क्रोध को शांत करने का कोई रसायन घुला होता है? बिलकुल नहीं। वास्तव में जब हम पानी पीते हैं अथवा हमें पिलाया जाता है और हम

MV July 2018 final for printing:Layout 1 6/22/2018 11:33 AM Page 40

इसके लिए तैयार हो जाते हैं तो हमारे मस्तिष्क की कोशिकाएँ या न्यूरॉन्स हमें पानी पीने के लिए अपेक्षित अंग संचालन करने का आदेश दे देते हैं जिससे हमारा ध्यान क्रोध के विषय से हटकर एक कार्य पर केंद्रित हो जाता है। यह ध्यान परिवर्तन का ही एक रूप है।

ध्यान परिवर्तन द्वारा भावों का परिवर्तन संभव है और ध्यान का परिवर्तन या भावों का परिवर्तन तभी संभव है जब हम शांत-स्थिर हों और इसके लिए जरूरी है व्यायाम और ध्यान-साधना। ध्यान-साधना का एकमात्र उपाय योग अथवा अन्य ध्यान साधनाएँ ही नहीं अपितु ऐसा कोई भी कार्य जिसमें एकाग्रता अपेक्षित हो ध्यान-साधना ही है। हर प्रकार के रचनात्मक कार्य से हमारी एकाग्रता

ध्यान परिवर्तन द्वारा भावों का परिवर्तन संभव है और ध्यान का परिवर्तन या भावों का परिवर्तन तभी संभव है जब हम शांत-स्थिर हों और इसके लिए जरूरी है व्यायाम और ध्यान-साधना। ध्यान-साधना का एकमात्र उपाय योग अथवा अन्य ध्यान साधनाएँ ही नहीं अपितु ऐसा कोई भी कार्य जिसमें एकाग्रता अपेक्षित हो ध्यान-साधना ही है। हर प्रकार के रचनात्मक कार्य से हमारी एकाग्रता का विकास होता है और उससे हमें ध्यान के लाभ प्राप्त होते हैं।

का विकास होता है और उससे हमें ध्यान के लाभ प्राप्त होते हैं। इससे हमारा भौतिक स्वास्थ्य भी अच्छा रहता है। जितना हम भौतिक रूप से स्वस्थ होंगे उतने ही शांत-स्थिर रह कर क्रोध के आवेग से बचे रह सकेंगे। शरीर और मन दोनों के स्वस्थ होने पर क्रोध की अधिकता का प्रश्न ही नहीं उठता।

एक सज्जन बहुत क्रोध करते थे। उनके एक मित्र ने एक दिन उनसे कहा कि भाई आप बहुत क्रोध करते हो जो आपके स्वास्थ्य के लिए घातक है। इस पर उन सज्जन ने आगबबूला होते हुए कहा, ''कौन .... कहता है कि मैं क्रोध करता हूँ? और यदि मैं क्रोध करता भी हूँ तो किसी कारण से ही तो करता हूँ।'' कुछ लोग कोई भी बात हो क्रोध नहीं छोड़ पाते। किसी को कुछ अच्छी बात बतानी या सिखानी है अथवा किसी को कुछ अच्छा खिलाना-पिलाना है तो भी क्रोध अवश्य करेंगे। क्रोध के दुष्परिणामों को देखते हुए सभी संत-महात्मा और समझदार व्यक्ति क्रोध न करने पर बल देते हैं क्योंकि क्रोध में कही गई बात का प्रभाव कम ही पड़ता है।

एक गाँव में एक मठ में एक बाबा रहते थे और वो प्रायः एक ही बात जोर देकर कहते थे कि क्रोध मत करो। वे हर समस्या का एक ही समाधान बतलाते थे कि क्रोध मत करो। एक दिन एक संत का वहाँ से गुजरना हुआ। वो संत भी उस बाबा के पास गए और उनसे जीवन में हमेशा प्रसन्न रहने का कोई मंत्र बतलाने की प्रार्थना की। बाबा ने कहा कि यदि हमेशा प्रसन्न रहना चाहते हो तो कभी किसी पर क्रोध मत करना। संत ने बाबा से पूछा, 'आपने क्या कहा मुझे ठीक से सुनाई नहीं पड़ा?' बाबा ने थोड़ा जोर से कहा, 'गुस्सा मत करना।' संत ने पुनः कहा, 'बाबा थोड़ा ठीक से समझाते हुए एक बार और बतलाइए।' बाबा ने क्रोधपूर्ण लहजे में कहा, 'अरे मूर्ख क्रोध मत करना।' संत ने कहा कि उसे ठीक से सुनाई नहीं दिया अतः एक बार फिर से बतला दीजिए। इस बार बाबा ने पास में रखा डंडा उठाकर संत के सर पर दे मारा।

अब संत ने बाबा से पूछा, 'बाबाजी यदि क्रोध न करना ही जीवन में हमेशा प्रसन्न रहने का मंत्र है तो आपने मुझ पर इतना क्रोध क्यों किया? क्या आप स्वयं प्रसन्न रहना नहीं चाहते?' वास्तव में यदि हम किसी को अक्रोध अथवा विनम्रता का पाठ पढ़ाना चाहते हैं तो हमें भी अपने आचरण में सकारात्मक परिवर्तन करना होगा। आज करोड़ों लोग सत्संगों में जाते हैं लेकिन उनके आचरण में अपेक्षित सकारात्मक परिवर्तन नहीं दिखलाई

MV July 2018 final for printing:Layout 1 6/22/2018 11:33 AM Page 41

पड़ता। कारण स्पष्ट है। एक हिंसक व्यक्ति अहिंसा का पाठ नहीं पढ़ा सकता और एक क्रोधी व्यक्ति दूसरों में अक्रोध व सहिष्णुता का भाव उत्पन्न नहीं कर सकता।

क्रोध न आना अच्छी बात है पर यदि क्रोध आने पर आप उसे सही रूप में व्यक्त नहीं करते तो यह स्थिति आपके स्वास्थ्य के लिए बेहद खराब हो सकती है अतः उचित रीति से क्रोध कीजिए तथा क्रोध प्रकट करने के बाद आप उसे मन से निकाल भी दीजिए अन्यथा यह स्थिति आपके लिए घातक हो सकती है। यदि आपको क्रोध नहीं आता तो यह सात्त्विक अवस्था है। आपको क्रोध आता है और क्रोध आने पर उसे व्यक्त तो करते हैं पर मन में क्रोध का भाव नहीं रहने देते तो ये राजसिक अवस्था है लेकिन यदि क्रोध आने पर उसको प्रकट करें या न करें पर मन से क्रोध के भाव नहीं जाते तो ये तामसिक अवस्था है, जो सर्वाधिक घातक है। मन में व्याप्त घातक मनोभाव ही हमारे अनेक रोगों के लिए उत्तरदायी हैं अतः घातक मनोभावों से मुक्ति ही वास्तविक उपचार है। क्रोध जैसे भाव का भी मन में व्याप्त रहना घातक है और इससे मुक्ति उपचार की प्रक्रिया ही है। बहुत जरूरी हो तभी क्रोध करें और वह भी बाहरी रूप से लेकिन मन में बिलकुल क्रोध न रखें।

एक कहानी और याद आ रही है। किसी गाँव में एक साँप रहता था जो वहाँ से गुजरने वालों को काट लेता था। लोग उससे बहुत भयभीत रहते थे। गाँव के लोगों ने अपनी समस्या एक बुद्धिमान व्यक्ति के सामने रखी। उसने साँप को बुलाकर समझाया तो वह मान गया और उसने लोगों को काटना छोड़ दिया। अब लोग साँप से डरते नहीं थे बल्कि उसके साथ खेलते थे। खेल-खेल में लोगों ने उसको तंग करना शुरू कर दिया। कोई उसे अपने गले में डाल लेता तो कोई कोड़े की तरह उससे दूसरे की पिटाई करता। साँप लोगों से तंग हो गया तो एक दिन उसी बुद्धिमान व्यक्ति के पास गया जिसने उसे काटने से मना किया था। साँप ने अपनी सारी व्यथा कह सुनाई।

बुद्धिमान व्यक्ति ने कहा, 'मैंने तुझे काटने के लिए मना किया था न कि फुँफकारने के लिए। किसी को काटना बुरी बात है पर अपने बचाव के लिए फुँफकारना भी जरूरी है।' इसी प्रकार क्रोध कई बार अनिवार्य होता है पर मन में उसकी तीव्रता उचित नहीं। क्रोध करो लेकिन उससे स्वयं का या दूसरों का अहित नहीं होना चाहिए। स्वयं का अहित भी बिलकुल नहीं होना चाहिए और यह तभी संभव है जब क्रोध के प्रकटीकरण के बाद क्रोध व्यक्ति के मनोभावों में व्याप्त न रहे। मल-मूत्र व अन्य दूषित पदार्थों तथा अन्य विकृत मनोभावों की तरह क्रोध को भी निकाल कर बाहर फेंक देना ही श्रेयस्कर है। मन में इसकी अत्यल्प मात्रा भी नुक्सान ही पहुँचाएगी। यदि क्रोध करना अनिवार्य ही है तो अपने क्रोधी स्वभाव पर क्रोध कीजिए और उसे अपने मन से निकालकर ही दम लीजिए।

लेखक मनोवैज्ञानिक विषयों के समर्थ लेखक हैं।

- *''क्रोध से मूढ़ता उत्पन्न होती है, मूढ़ता से स्थिति भ्रांत हो जाती है, स्मृति भ्रांत होने से बुद्धि का नाश होता है और बुद्धि नष्ट होने पर प्राणी स्वयं नष्ट हो जाता है।''*

  - श्रीमद्भगवद्गीता।

- *''सज्जनों का क्रोध जल पर खींची गई रेखा के समान है, जो शीघ्र ही विलुप्त हो जाती है।''*

MV July 2018 final for printing:Layout 1 6/22/2018 11:33 AM Page 42

15 अगस्त, 2018 को भारत की स्वतंत्रता के 71 वर्ष पूर्ण हो रहे हैं। इस अवसर पर स्वतंत्र भारत की स्थितियों की समीक्षा करना समीचीन होगा। 1857 के स्वातंत्र्य समर की असफलता ने देश को झकझोर दिया था तब स्वामी दयानंद तथा अन्य विचारकों ने इस समर की असफलता के कारणों पर गहन चिंतन किया और इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि भारत की पराधीनता का मुख्य कारण आपस की फूट व आपसी विद्वेष है। इस विद्वेष को समाप्त करने और देश में स्वदेशाभिमान और स्वराज की भावना जाग्रत करने में स्वामी दयानंद ने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। आज देश में आपसी फूट और विद्वेष की ज्वालाएँ पुनः भड़काई जा रही हैं। इस स्थिति से निपटने के लिए स्वामी दयानंद के प्रयासों पर दृष्टिपात करना समय की माँग है।

MV July 2018 final for printing:Layout 1 6/22/2018 11:33 AM Page 43

डॉ. रवींद्र अग्रवाल

अंग्रेजों के शोषण के खिलाफ स्वराज के मंत्रद्रष्टा स्वामी दयानंद

स्वामी दयानंद सरस्वती के जन्म के समय भारत में भारी उथल-पुथल मची हुई थी। देश का प्रत्येक नागरिक चाहे वह ग्रामवासी हो,नगरवासी या वनवासी अथवा मजूदर हो या राजा-महाराजा ईस्ट इंडिया कंपनी के उत्पीड़न का शिकार था। भारत में व्यापार करने आई एक कंपनी भारत की शासक बन बैठी। 22 जून,1757 को पलासी के युद्ध में मीर जाफर के विश्वासघात के कारण नवाब सिराजुद्दौला को पराजय का मुँह देखना पड़ा और अंग्रेज बंगाल के सर्वेसर्वा बन गए। 1757 से लेकर 1857 के प्रथम स्वातंत्र्य संग्राम के 100 वर्ष का इतिहास अंग्रेजों के बर्बर अत्याचार, छल-कपट, लूट और भोले-भाले वनवासियों की जमीन से लेकर राजा-महराजाओं के तख्तो-ताज को हड़पने और भारत से लूटी गई अकूत संपदा को इंग्लैंड भेजने का इतिहास है।

स्वामी दयानंद ने किन परिस्थितियों में देशवासियों को 'स्वराज' का मंत्र दिया उन्हें समझने के लिए अंग्रेजों के इस स्वेच्छाचारी शासन की क्रूरता को जानना आज बहुत आवश्यक है। यहाँ यह जानना भी आवश्यक है कि ईस्ट इंडिया कंपनी ने भारत में जो उत्पीड़न व अत्याचार किए वे ब्रिटिश सरकार की स्वीकृत नीति के अनुसार ही थे।

अंग्रजों की लूट

गांधीवादी लेखक स्व. धर्मपाल के अनुसार 'ब्रिटिश सरकार ने शाही फरमान के जरिये एक स्वयंभू संस्था की तरह दूसरे इलाकों को विजित करके उन पर हुकूमत चलाने के पूरे अधिकार दे

MV July 2018 final for printing:Layout 1 6/22/2018 11:33 AM Page 44

रखे थे। ... बस एक शर्त यह थी यहाँ से होने वाली आमदनी (लूट) का पाँचवाँ हिस्सा राजा के खजाने में जमा करा देंगे।'[1] ईस्ट इंडिया कंपनी भारत में जो कर रही थी वह ब्रिटिश अभिजात वर्ग के आदर्शों व निर्देशों के अनुरूप ही था।[2] वास्तव में विदेशी लूट ब्रिटिश देश सेवा की एक बहुमूल्य आवधारणा रही है।[3]

ब्रिटिश फौज में '...अफसर पद की भर्ती कानूनी तौर पर सन् 1860 ई. तक खरीदी जाती थी। क्योंकि इन पदों पर अच्छी आमदनी के साथ ही पद के अनुरूप

'कंपनी और उसके नौकरों पर दौलत की खूब वर्षा हुई। मुर्शीदाबाद से कलकत्ते के फोर्ट विलियम को आठ लाख पौंड की कीमत की चाँदी के सिक्के नावों में भर कर भेजे गए और जो कलकत्ता कुछ ही महीनों पहले सुनसान पड़ा था वह अब हराभरा हो गया। हर अंग्रेज घर में व्यापार चमक उठने और वैभव के निशान प्रगट होने लगे।' –लॉर्ड मैकाले

उस लूट में हिस्सा मिलता था, जो लूट लड़ाई के समय ब्रिटिश सेना पराजित राज्य में करती थी।[4] गांधी जी के सहकर्मी व प्रसिद्ध गांधीवादी अर्थशास्त्री जोसेफ कॉर्नेलियस कुमारप्पा (जे.सी.कुमारप्पा) ने अंग्रेजों की लूट का जो विवरण अपनी पुस्तक 'हिंदुस्तान और ब्रिटेन का आर्थिक लेन-देन' में दिया है वह आँखें खोल देने वाला है। उन्होंने लिखा है ''बहुत शुरू के जमाने में ईस्ट इंडिया कंपनी के आदमियों ने इस देश में खुली लूट मचाई। पलासी के बाद के हालात बयान करने हुए मैकाले कहता है 'अब कंपनी और उसके नौकरों पर दौलत की खूब वर्षा हुई। मुर्शीदाबाद से कलकत्ते के फोर्ट विलियम को आठ लाख पौंड की कीमत की चाँदी के सिक्के नावों में भर कर भेजे गए और जो कलकत्ता कुछ ही महीनों पहले सुनसान पड़ा था वह अब हराभरा हो गया। हर अंग्रेज घर में व्यापार चमक उठने और वैभव के निशान प्रगट होने लगे। रही बात क्लाइव की सो उसका कोई हाथ पकड़ने वाला ही न था।'' एस्ए ऑन लॉर्ड क्लाइव, (जिल्द 3, पृ. 240)।[5]

जिस क्लाइव (1725-1774) का उल्लेख मैकाले ने किया है ''वह 18 साल की उम्र में ईस्ट इंडिया कंपनी की नौकरी में 'लेखक' के पद पर आया था। 35 वर्ष की आयु में वह जब इंग्लैंड लौटा तब उसके पास 3 लाख पौंड की संपत्ति जमा हो गई थी और उसे अपनी जागीर से 27 हजार पौंड सालाना की खालिस आमदनी थी। सरकारी अर्थ नीति और ईमानदारी के जो उसूल इस लुटेरे राजनीतिज्ञ ने अपने समय में चलाये थे वे आजतक भारत सरकार की अर्थनीति के मुख्य अंग बने हुए हैं।''[6]

अंग्रेजों की लूट का विस्मयकारी चित्रण करते हुए 'ब्रुक्स एडम्स' अपनी पुस्तक 'लॉ ऑफ सिविलाइजेशन एंड डिके' के पृ. 317 पर कहता है ''शायद जब से सृष्टि हुई है, पूँजी लगाने के किसी काम में कभी इतना मुनाफा नहीं हुआ जितना हिन्दुस्तान की लूट से हुआ। क्योंकि 50 साल तक ग्रेट ब्रिटेन का कोई प्रतिद्वंद्वी नही रहा।''[7] यही नहीं 'प्रास्परस ब्रिटिश इंडिया' के पृ.33 पर विलियम डिग्वीया लिखता है ''शायद पलासी और वाटरलू के दरमियान हिंदुस्तान के खजाने से अंग्रेजी बैंको में कोई एक अरब पौंड धन भेजा गया होगा।''[8]

अंग्रेजों की भयावह लूट का यह सब विवरण ब्रिटेन के उस भद्रलोक का लिखा हुआ है जो सरकार की रीति-नीति से पूरी तरह वाकिफ थे और प्रशासन पर जिनकी पूरी पकड़ थी।

वनवासियों की जमीन पर बलात् कब्जा

अंग्रेजों ने भारत को केवल आर्थिक रूप से ही नहीं लूटा वरन् रेल निर्माण के लिए वनवासियों की जमीन पर बलात् कब्जे किए गए।[9] 1793 से कार्नवालिस के भूमिकर नियम द्वारा बंगाल, बिहार व उड़ीसा में जमींदारी

MV July 2018 final for printing:Layout 1 6/22/2018 11:33 AM Page 45

प्रथा का प्रारंभ हुआ इससे वनवासी भूमि से बेदखल हो गए।[10]

मनमाना लगान

ब्रिटिश सरकार ने बंगाल और मद्रास दोनों रेजीडेंसियों में कुल कृषि उपज का 50 प्रतिशत लगान तय किया यह लगान 1760 से 1820 के बीच तय हुआ।[11] इससे स्पष्ट है कि कृषि उपज पर मनमाना लगान लगा कर किसानों को इस तरह लूटा जिससे वे कंगाल हो गए।

बेगार

ब्रिटिश सरकार ने भारत के लोगों को मनमाने तरीके से लूटा ही नहीं वरन् उनसे बेगार भी कराई जाती थी। ''सड़क बनवाने तथा ब्रिटिश सेना के साथ कसाई, मोची, तेली, लोहार, बढ़ई व कुली आदि 34-35 पेशों के लोगों से बेगार कराई जाती थी। इसके अलावा 300-400 बैलगाड़ियाँ व घोड़े खच्चर आदि भी बेगार में लिए जाते थे।[12]

ईस्ट इंडिया कंपनी के खिलाफ वनवासी संघर्ष

अंग्रेजों ने जिस प्रकार वनवासियों के सामाजिक जीवन से खिलवाड़ किया और उनका आर्थिक शोषण किया, इससे उद्वेलित होकर वनवासियों ने पलासी के युद्ध के बाद से ही अंग्रेजों के खिलाफ संघर्ष किए। देश के विभिन्न वनवासी क्षेत्रों में 1757 से 1856 तक 90 से अधिक संघर्ष हुए, परंतु अंग्रेजों ने इन्हें 'बलवा', 'दंगे', 'धार्मिक झगड़े' आदि नाम देकर इन्हें कमतर दिखाने की कोशिश की।[13]

अंग्रेज सरकार द्वारा 1810-11 में आवास कर लगाया गया तो उसके विरुद्ध चले आंदोलन का केंद्र वाराणसी शहर रहा। वाराणसी के क्लेक्टर के अनुसार कोई 20 हजार लोग लगातार धरने पर बैठे रहे।[14] इसी प्रकार 1840 में सूरत में नमक कर के खिलाफ आंदोलन हुआ।[15]

नष्ट किए उद्योग धंधे

अंग्रेजों द्वारा भारतीय उद्योग धंधों को भी सुनियोजित तरीके से बर्बाद किया गया। भारत के बाजार में इंग्लैंड के कारखानों का माल खपाया गया और यहाँ से कच्चा माल वहाँ भेजा गया। इससे भारतीयों को जो दुर्दिन देखने पड़े उसका एक उदाहरण 1828 में बंगाली अखबार 'समाचार दर्पण' में प्रकाशित एक विधवा महिला के पत्र से स्पष्ट होता है। उसने लिखा कि 22 वर्ष की आयु में उसकी तीन लड़कियाँ थी। वह विधवा हो गई थी। लेकिन चरखे पर सूत कात कर उसे इतनी आमदनी हो जाती थी कि घर खर्च चलाने के बाद भी उसने कुछ ही वर्षों

अंग्रेजों ने जिस प्रकार वनवासियों के समाजिक जीवन से खिलवाड़ किया और उनका आर्थिक शोषण किया उससे उद्वेलित होकर वनवासियों ने पलासी के युद्ध के बाद से ही अंग्रेजों के खिलाफ संघर्ष किए। देश के विभिन्न वनवासी क्षेत्रों में 1757 से 1856 तक 90 से अधिक संघर्ष हुए।

में तीनों लड़कियों की शादी कर दी। जब उसके ससुर की मृत्यु हुई तो उसने उनका श्राद्ध भी किया। इस पर 44 रुपये खर्च हुए। वह चरखा कात कर सम्मानपूर्वक जी रही थी। परंतु जब से विलायती सूत भारत आने लगा तब से हालत खराब हो गई। गांधी जी ने यह पूरा पत्र 1931 में 'यंग इंडिया' में छापा था।[16]

अकाल

अंग्रेजी राज में पड़ने वाले अकालों ने तो न केवल किसानों की रीढ़ तोड़ दी वरन् असंख्य लोग काल के गाल में समा गए। पलासी की लड़ाई के बाद 1769-70 में पड़े अकाल से बंगाल, बिहार व उड़ीसा की एक तिहाई आबादी नष्ट हो गई। 1837-38 में समस्त उत्तर भारत अकाल ग्रस्त हुआ जिसमें आठ लाख व्यक्ति मौत का शिकार हुए। 1861 में पुनः भारी अकाल पड़ा जिसमें उत्तर भारत में असंख्य व्यक्ति मरे।[17]

1770 में पड़े भयंकर अकाल पीड़ितों को कोई राहत देने की स्थान पर कंपनी सरकार ने भूमि कर बढ़ा कर

MV July 2018 final for printing:Layout 1 6/22/2018 11:33 AM Page 46

10 प्रतिशत कर दिया। अकाल के कारण देश में चोरी, डकैती व अपराध बढ़ गए।[18] बढ़ती हुई अव्यवस्था से जनमानस में अंग्रेजों के खिलाफ गुस्सा कई तरह से फूटा। 1770 से 1800 के बीच बंगाल, बिहार व उड़ीसा का क्षेत्र सन्यासी आंदोलन का केंद्र रहा।[19]

ईसाई धर्मांतरण का कुचक्र

पलासी की लड़ाई के बाद जब ईस्ट इंडिया कंपनी बंगाल में एक राजनीतिक सत्ता के रूप में उभरी तो इसके साथ ही भारत में ईसाईयत की प्रक्रिया प्रारंभ हो गई।

1792 में ईस्ट इंडिया कंपनी के डायरेक्टर चार्ल्स ग्रांट ने भारत को स्थायी उपनिवेश बनाने के लिए भारत के समस्त हिंदुओं को ईसाई बनाने को आवश्यक करार दिया।[20] कंपनी के कर्मचारियों ने भारत को ईसाई बनाने में बहुत रुचि ली। इसके बाद 1813 में ब्रिटिश पार्लियामेंट में एक एक्ट पारित किया गया जिसके तहत भारत में ईसाईयत के प्रचार की ब्रिटिश सरकार को विधिवत् अनुमति मिल गई।

1792 में ईस्ट इंडिया कंपनी के डायरेक्टर चार्ल्स ग्रांट ने भारत को स्थायी उपनिवेश बनाने के लिए भारत के समस्त हिंदुओं को ईसाई बनाने को आवश्यक करार दिया।[20] कंपनी के कर्मचारियों ने भारत को ईसाई बनाने में बहुत रुचि ली। इसके बाद 1813 में ब्रिटिश पार्लियामेंट में एक एक्ट पारित किया गया जिसके तहत भारत में ईसाईयत के प्रचार की ब्रिटिश सरकार को विधिवत् अनुमति मिल गई। इसी एक्ट के आधार पर 1814 में पहला बिशप मिडिलटोन भारत आया।[21] इसके बाद तो न केवल ईसाई पादरी बल्कि समस्त ब्रिटिश सरकारी प्रशासक व सैनिक अधिकारी भारत के ईसाईकरण के अभियान में जुट गए और इसके लिए अनेक अमानुषिक अत्याचार व निम्न स्तर के हथकंडे अपनाये गए।[22]

प्रबुद्धवर्ग का बौद्धिक दारिद्र्य

अंग्रेजों ने भारत के प्रबुद्ध वर्ग को भी अपने प्रभाव में लेने के हर संभव प्रयास किए। जिसका परिणाम यह हुआ ''1803 तक हमारा प्रभावशाली वर्ग मानसिक पराजय स्वीकार कर चुका था। इस वर्ग का एक महत्त्वपूर्ण अंश उत्साहपूर्वक ब्रिटिश जीवन पद्धति, ब्रिटिश विचार पद्धति एवं अधिकारी पद्धति को ऐसे अपना रहा था मानो वह बौद्धिक दारिद्र्य से ग्रस्त हो। उसके पास न अपनी प्रभा हो, न प्रतिभा हो न प्रतिमान।[23] ऐसे ही समय राजा राम मोहन राय ने स्पष्ट रूप से कहा कि परकीयों का शासन भारतवासियों के लिए एक देवी वरदान के तुल्य है। अपनी संक्षिप्त आत्मकथा में उन्होंने लिखा ''यूरोपीय लोगों को अधिक प्रतिभा संपन्न, दृढ़ तथा अपने व्यवहार में संतुलित पा कर मैंने उनके प्रति अपने पूर्वाग्रह को छोड़ दिया तथा धीरे-धीरे उनके प्रति मेरा मानस अनुकूल बनता गया।... उनके शासन से यहाँ के लोगों की शीध्र ही उन्नति हो जाएगी।[24] इसके विपरीत दयानंद के मन में ''व्यापक हिंदू समाज की समकालीन सांस्कृतिक बुद्धि के प्रति एक गहरे दुःख का भाव था।... दयानंद में भारतीय समाज के प्रति ममत्व का प्रेम था।[25]

स्वदेशी राज ही उत्तम

यही कारण है कि 1857 के प्रथम स्वातंत्र्य संग्राम के बाद जब महारानी विक्टोरिया ने भारत के शासन की बागडोर ईस्ट इंडिया कंपनी से अपने हाथों में ली और घोषणा की ''अब प्रजा के साथ पक्षपात रहित न्याययुक्त, माता-पिता के समान दयापूर्वक शासन होगा।'' ऐसे समय में स्वामी दयानंद ने 'सत्यार्थ प्रकाश' में लिखा ''कोई कितना भी करे, परंतु जो स्वदेशीय राज होता है वह सर्वोपरि उत्तम होता है। अथवा मत-मतांतर के आग्रह रहित अपने और पराये का पक्षपात शून्य, प्रजा पर पिता-माता के समान कृपा, न्याय व दया के साथ

MV July 2018 final for printing:Layout 1 6/22/2018 11:33 AM Page 47

विदेशी का राज भी पूर्ण सुखदायक नहीं है।[26]

पलासी की लड़ाई के बाद अंग्रेजों की लूट, वनवासियों को उनकी जमीनों से बेदखल करने, ईसाई धर्मांतरण के प्रयासों और अपने देश के प्रभावशाली वर्ग की मानसिक गुलामी के मुख्य बिंदुओं का उल्लेख यहाँ पूर्व पीठिका के रूप में इसलिए किया है जिससे भारत को गरीब, भिखारी, असभ्य, अनपढ़ व पिछड़ा बताने और इसके लिए अपने स्वाभिमानी पुरखों को दोष देने वालों को इस बात का एहसास हो जाए कि अंग्रेजों की लूट ने किस प्रकार भारत को कंगाल बना दिया और उनके अत्याचारों व षड्यंत्रों ने कैसे भारत के सामाजिक, धार्मिक व अध्यात्मिक ताने-बाने को तहस-नहस कर दिया। देश को इस स्थिति से उबारने के लिए ही स्वामी दयानंद ने स्वधर्म, स्वराज, स्वभाषा, स्वदेशी और स्वाभिमान की अलख देशवासियों के मन में जगाई।

भारत के पराभव के कारण

जिस प्रकार एक कुशल चिकित्सक रोगी का उपचार करने से पूर्व रोग के कारणों को समझकर उसका उपचार करता है उसी प्रकार स्वामी दयानंद ने गुलामी के कारणों को समझा। सत्यार्थ प्रकाश व अपने उपदेशों में उन्होंने इन कारणों की विशद् व्याख्या की है ''अब अभाग्योदय से और आर्यों के आलस्य, प्रमाद, परस्पर के विरोध से अन्य देशों के राज करने की तो कथा ही क्या कहनी किंतु आर्यावर्त्त में भी, आर्यों का अखंड, स्वतंत्र, स्वाधीन निर्भय राज इस समय नहीं है। जो कुछ है सो भी विदेशियों के पादाक्रांत हो रहा है। कुछ थोड़े राजा स्वतंत्र हैं। दुर्दिन जब आता है तब देशवासियों को अनेक प्रकार का दुःख भोगना पड़ता है।''[27]

'सत्यार्थ प्रकाश' के दशम् समुल्लास में वे कहते हैं ''विदेशियों के आर्यावर्त्त में राज होने के कारण आपस की फूट, मतभेद, ब्रह्मचर्य का सेवन न करना, विद्या न पढ़ना-पढ़ाना व बाल्यावस्था में अस्वयंवर विवाह, विषयासक्ति, मिथ्या भाषण, कुलक्षण, वेद-विधान का अप्रचार आदि कुकर्म हैं। जब आपस में भाई-भाई लड़ते हैं तभी तीसरा विदेशी आकर पंच बन बैठता है।''[28] ''...प्रमाणों से सिद्ध है कि सृष्टि से लेकर महाभारत पर्यंत चक्रवर्ती सार्वभौम राजा आर्य कुल में ही हुए थे। अब इनकी संतानों का अभाग्योदय होने से राज भ्रष्ट होकर विदेशियों के पादाक्रांत हो रहे हैं।''[29]

उपर्युक्त उद्धरणों से स्पष्ट है कि स्वामी दयानंद के

अंग्रेजों की लूट ने भारत को कंगाल बना दिया और उनके अत्याचारों व षड्यंत्रों ने भारत के सामाजिक, धार्मिक व अध्यात्मिक ताने-बाने को तहस-नहस कर दिया। देश को इस स्थिति से उबारने के लिए ही स्वामी दयानंद ने स्वधर्म, स्वराज, स्वभाषा, स्वदेशी और स्वाभिमान की अलख देशवासियों के मन में जगाई।

अनुसार भारत की पराधीनता के प्रमुख कारण निम्न प्रकार हैं :-

- आपस की फूट और मतभेद ।
- अशिक्षा व वेदों का अध्ययन न होना ।
- व्यसन व कुकर्म, शास्त्र विरुद्ध आचरण।
- मिथ्या भाषण, पाखंड व अनाचार आदि।

'सत्यार्थ प्रकाश' (1875) के 34 वर्ष बाद महात्मा गांधी ने भी 'हिंद स्वराज'(1909) में स्पष्ट लिखा है कि भारत की गुलामी का कारण भारतीयों की आपसी फूट, लोभ-लालच व धर्म का अभाव है। उन्होंने लिखा ''अंग्रेज व्यापारियों को हमने बढ़ावा दिया तभी वे हिंदुस्तान में अपने पैर फैला सके। वैसे ही जब हमारे राजा लोग आपस में झगड़े तब उन्होंने कंपनी बहादुर से मदद माँगी।''[30] गांधी जी ने भारी मन से लिखा ''पहला दुःख मुझे यह है कि हिंदुस्तान धर्मभ्रष्ट होता जा रहा है। धर्म का अर्थ मैं यहाँ हिंदू, मुस्लिम या जरथोस्ती धर्म नहीं करता। लेकिन इन सब धर्मों के अंदर जो 'धर्म' है वह

MV July 2018 final for printing:Layout 1 6/22/2018 11:33 AM Page 48

हिंदुस्तान से जा रहा है, हम ईश्वर से विमुख होते जा रहे हैं।...यह लड़ाई धर्म को भूलकर नहीं लड़ी जाएगी, बल्कि सही तौर पर धर्म को समझ कर और उसकी रक्षा के लिए लड़ी जाएगी।''[31]

विदेशी गुलामी का उपचार

स्वामी दयानंद ने स्पष्ट कहा ''यद्यपि रोग बहुत बढ़ा हुआ है तथापि इसका उपाय हो सकता है। यदि परमात्मा की कृपा हुई तो रोग असाध्य नही है।''[32] आर्यों को गुलामी की दीन-हीन दशा से उबारने और उनके मन में स्वधर्म, स्वदेश, स्वदेशाभिमान व स्वराज की चेतना जाग्रत करने के लिए स्वामी दयानंद ने जहाँ जन जागरण के लिए अध्यात्मिक पृष्ठभूमि तैयार की, समाज को वैदिक शिक्षा और स्वाध्याय के लिए प्रेरित किया वहीं मजबूत संगठन की नीवँ भी रखी।

''यह आर्यावर्त्त देश ऐसा देश है जिसके सदृश भूगोल में दूसरा कोई देश नहीं है। इसीलिए इस भूमि का नाम सुवर्ण भूमि है, क्योंकि यही सुवर्णादि रत्नों को उत्पन्न करती है। सृष्टि से लेकर पाँच सहस्र वर्षों से पूर्व समय पर्यंत आर्यों का सार्वभौम चक्रवर्ती अर्थात् भूगोल में सर्वोपरि एक मात्र राज्य था। अन्य देश में मांडलिक छोटे-छोटे राज्य होते थे। –स्वामी दयानंद

''स्वामी दयानंद समाज का वेदों के अनुसार पुनर्गठन करना चाहते थे। उन्होंने हिंदुत्व की कमजोर पड़ी भावना को पुनर्जाग्रत किया। वेदों के समान उपनिषदों की भी यथार्थवादी और मानववादी व्याख्या की है।''[33] इस व्याख्या के आधार पर उन्होंने समाज जीवन को आध्यात्मिक आधार दिया और आर्यों को उनकी सनातन परंपरा का बोध कराया।

जिस समय ईस्ट इंडिया कंपनी ने पलासी में विजय प्राप्त की तब भारत में राष्ट्र चेतना का अभाव था। 'डॉ. आर. सी. मजूमदार' की पुस्तक ग्लिम्पस्ज ऑफ बंगाल इन नाइन्टीन्थ सेंचुरी, पृ.18 के अनुसार ''कोई भारतीय नहीं था, बल्कि सब बंगाली, हिंदुस्तानी, सिक्ख, राजपूत और मराठा में बंटा हुआ था।'' स्वामी दयानंद ने इस स्थिति को भली प्रकार समझा, इसीलिए उन्होंने भारत को आर्यावर्त्त कह कर संबोधित किया और इसका प्रारंभ सृष्टि के प्रारंभ से बताते हुए इस आर्यावर्त्त में रहने वाले को आर्य कहा। आर्यों में स्वदेशाभिमान जाग्रत करने के लिए उन्होंने 'सत्यार्थ प्रकाश' में लिखा ''यह आर्यावर्त्त देश ऐसा देश है जिसके सदृश भूगोल में दूसरा कोई देश नहीं है। इसीलिए इस भूमि का नाम सुवर्ण भूमि है, क्योंकि यही सुवर्णादि रत्नों को उत्पन्न करती है।''[34]

आर्यों के स्वर्णिम इतिहास का उल्लेख करते हुए उन्होंने कहा ''सृष्टि से लेकर पाँच सहस्र वर्षों से पूर्व समय पर्यंत आर्यों का सार्वभौम चक्रवर्ती अर्थात् भूगोल में सर्वोपरि एक मात्र राज्य था। अन्य देश में मांडलिक छोटे-छोटे राज्य होते थे।''[35]

स्वराज की महत्ता को प्रतिपादित करते हुए स्वामी दयानंद ने घोषणा की ''जो स्वदेशीय राज्य होता है, वह सर्वोपरि उत्तम होता है।''[36] इस प्रकार उन्होंने देशवासियों के सम्मुख 'स्वदेश' और 'स्वराज' का लक्ष्य प्रस्तुत किया।

उन्होंने समाज के सम्मुख केवल 'स्वराज' का लक्ष्य प्रस्तुत कर अपने कर्तव्य की इतिश्री नहीं समझी वरन् 1857 के स्वातंत्र्य समर के असफल होने के कारणों का भी विशद् विवेचन किया। 1857 के समर की चिनगारियाँ देश भर में चार-पाँच वर्ष तक भड़कती रही। इससे उन्हें यह बात तो स्पष्ट हो गयी कि देश में भले ही अंग्रेजों का राज है परंतु अधिकांश देशवासियों के मन में अभी भी विदेशी राज के प्रति घृणा और असंतोष का भाव है। उन्होंने यह अनुभव किया कि ऐसा ही भाव औरंगजेब के शासन काल में मुगलों के विरुद्ध था।

MV July 2018 final for printing:Layout 1 6/22/2018 11:33 AM Page 49

दक्षिण में शिवाजी, मध्य भारत में छत्रसाल बुंदेला व उत्तर भारत में गुरुगोविंद सिंह ने अपनी स्वतंत्र सत्ता स्थापित कर ली थी। ''पूरे देश में स्थान-स्थान पर मुगल साम्राज्य के खिलाफ जनता में व्यापक रूप से असंतोष था।''[37] यही नहीं मारवाड़ के दुर्गादास राठौड़ ने औरंगजेब के शहजादे अकबर को फोड़कर अपने पिता के खिलाफ ही खड़ा कर दिया था। जिसका परिणाम यह हुआ कि औरंगजेब जब शहजादा अकबर को पकड़ने के लिए दक्षिण गया तो जन असंतोष के कारण वह 26 वर्ष (1681 -1707) तक अपनी राजधानी वापस नहीं लौट सका और 1707 में दक्षिण में ही बुराहनपुर में उसकी मृत्यु हो गई।

''यह भारत का दुर्भाग्य ही कहा जायेगा कि व्यापक जन असंतोष होते हुए भी जर्जर मुगल वंश, क्षेत्रीय आधार पर संघर्ष होते हुए, संयुक्त केंद्रीय नेतृत्व के अभाव में, येन-केन-प्रकारेण बना रहा।''[38] जिस प्रकार मुगलों के विरुद्ध हुए संघर्ष सफल नहीं हुए उसी प्रकार केंद्रीय नेतृत्व के अभाव में अंग्रेजों के खिलाफ '1857 का स्वातंत्र्य समर' भी बिखर गया। इसी तथ्य को ध्यान में रखते हुए स्वामी दयानंद ने एक प्रश्न के उत्तर में अपने एक भक्त को कहा ''एक धर्म, एक भाषा और एक लक्ष्य बनाए बिना भारत का पूर्ण हित और जातीय उन्नति का होना दुष्कर कार्य है। सब उन्नतियों का केंद्र-स्थान एक है। जहाँ भाषा, भाव और भावना में एकता आ जाए वहाँ, सागर में नदियों की भाँति, सारे सुख एक-एक करके प्रवेश करने लग जाते हैं। मैं चाहता हूँ कि देश के राजे-महाराजे अपने शासन में सुधार और संशोधन करें। अपने राज्य में धर्म, भाषा और भावों में एकता उत्पन्न कर दें, फिर भारत भर में आप ही आप सुधार हो जाएगा।''[39]

भारत की जातीय उन्नति के लिए देशवासियों में धर्म, भाषा और भावों की एकता उत्पन्न करने की प्रेरणा उन्हें वैदिक वाङ्मय से ही प्राप्त हुई। ऋग्वेद में भावों की एकता व संगठन शक्ति के महत्त्व को स्पष्ट करते हुए कहा गया है–

समानो व आकृति समाना हृदयानि वः।
समानमस्तु वो मनो यथा वः सुसहासति ।।
(ऋ. 10.191.4)

हे स्तोताओ (मनुष्यों)! तुम्हारे हृदय (भावनाएँ) एक समान हों, तुम्हारे मन (विचार) एक जैसे हों, संकल्प (कार्य) एक जैसे हों, ताकि तुम संगठित होकर अपने सभी कार्य पूर्ण कर सको।[40]

पूरे समाज को एक मन करने की भावना से प्रेरित होकर स्वामी दयानंद ने देशी राज्यों में सुधार का बीड़ा उठाया। हाथरस, मुरसान, मसूदा आदि के जमीदारों तथा जागीरदारों से और अलवर, भरतपुर, करौली, जोधपुर, जयपुर, उदयपुर, ग्वालियर, इंदौर व बड़ौदा आदि के

एक धर्म, एक भाषा और एक लक्ष्य बनाए बिना भारत का पूर्ण हित और जातीय उन्नति का होना दुष्कर कार्य है। सब उन्नतियों का केंद्र-स्थान एक है। जहाँ भाषा, भाव और भावना में एकता आ जाए वहाँ, सागर में नदियों की भाँति, सारे सुख एक-एक करके प्रवेश करने लग जाते हैं। –स्वामी दयानंद

नरेश से संपर्क स्थापित कर उनमें राजनीतिक चेतना को उद्‌बुद्ध कर जिस राजनीतिक-सामाजिक क्रांति को जन्म दिया वह स्वतंत्रता संग्राम का एक महत्त्वपूर्ण अध्याय है।[41]

1877 के दिल्ली दरवार के समय स्वामी दयानंद दिल्ली पधारे थे। ''स्वामी जी चाहते थे कि राजा-महाराजाओं की सभा करके सब आर्यों में एक धर्म और एकता का तागा पिरो दिया जाए पर अनेक कारणों से इसमें सफलता न हो सकी।''[42]

भारतीय भूपालों से आशा को सफल न होते देख स्वामी जी ने देश के भिन्न-भिन्न मतों और जातीय विभागों के नेताओं की सभा बुलाई। उनके निमंत्रण पर

MV July 2018 final for printing:Layout 1 6/22/2018 11:33 AM Page 50

पंजाब के प्रसिद्ध सुधारक कन्हैया लाल अलखधारी, नवीन चंद्र राय, हरिश चंद्र चिंतामणी, सर सैयद अहमद, केशव चंद्र सेन और इंद्रमन ये 6 सज्जन वहाँ पधारे। इस सभा में भारत में सुधार पर विस्तृत चर्चा हुई इसमें स्वामी जी ने प्रस्ताव रखा ''हम भारतवासी सब, परस्पर एक मत होकर, एक ही रीति से देश का सुधार करें तो आशा है भारत देश सुधर जाएगा।''[43]

आर्य समाज की स्थापना

देश की उन्नति के लिए देशवासियों को एक मन करने की दृष्टि से स्वामी दयानंद ने एक सशक्त संगठन की आवश्यकता अनुभव की थी। इस दृष्टि से उन्होंने चैत्र शुक्ल पंचमी, शनिवार, संवत्1932 तद्नुसार 10 अप्रैल, 1875 को बंबई के गिर गाँव में सायं 5.00 बजे

''कबीर, नानक, चैतन्य, ब्रह्म समाज और आर्य समाज का यदि जन्म न होता तो आज भारत में हिंदुओं की अपेक्षा मुसलमान और ईसाइयों की संख्या निसंदेह बहुत अधिक होती। –स्वामी विवेकानंद

आर्य समाज की स्थापना की। वैसे स्वामी जी ने इससे पूर्व 1874 में जब वह पहली बार मुंबई पधारे थे तब आर्य समाज की स्थापना का विचार किया गया था, परंतु तब कई कारणों से आर्य समाज की स्थापना न हो सकी। इसके उपरांत जब स्वामी जी राजकोट की यात्रा पर गए तब उन्होंने वहाँ आर्य समाज की स्थापना कर दी और अधिकारी आदि नियत हो गए। परंतु उसका कार्य 5-6 माह तक ही चला फिर अप्रत्याशित कराणों से उसका कार्य बंद हो गया।[44]

मुंबई में आर्य समाज की स्थापना के संबंध में 'श्रीमद्दयानंद प्रकाश' में स्वामी सत्यानंद लिखते हैं– ''वैदिक धर्म प्रचारक सभा की नीवँ रखी गई। सुधार का कल्पतरु आरोपित किया गया। आर्य मान-मर्यादा तथा आर्य गौरव-गरिमा की रक्षा के निमित्त एक सैनिक संघ संगठित हुआ। सर्वसाधारण को धर्म प्रदान करने के लिए सत्संग-गंगा का स्रोत खुल गया और दीन दुखियों की सहायता के लिए एक सेवक सीमित उपस्थित हो गई।'' इस विवरण से स्पष्ट है कि आर्य समाज की स्थापना किन उद्देश्यों के लिए की गई थी। उस समय आर्य समाज के 28 नियम बनाए गए थे।[45] इनमें से कुछ नियम निम्न प्रकार हैं –

- समाज में सत्योपदेश के लिए संस्कृत और आर्य भाषा (हिंदी) में नाना प्रकार के ग्रंथ रहेंगें और साप्ताहिक पत्र 'आर्य प्रकाश' निकलेगा।
- प्रत्येक सभासद् न्यायपूर्वक पुरुषार्थ से जितना धन प्राप्त करे उसमें से शतांश आर्य समाज, आर्य विद्यालय और आर्य प्रकाश पत्र के प्रचार और उन्नति के लिए आर्य समाज के कोष में देवे।
- स्त्री और पुरुष इन दोनों के विद्याभ्यास के लिए यथा संभव प्रत्येक स्थान पर आर्य विद्यालय पृथक-पृथक बनाए जाएंगे।
- इस समाज में स्वदेश के हितार्थ दो प्रकार की शुद्धि के लिए प्रयत्न किए जाएगे – एक परमार्थ दूसरा व्यवहार।

इसके दो वर्ष बाद 1877 में जब स्वामी जी लाहौर गए तब वहाँ भी आर्य समाज की स्थापना हुई। इस समय स्वामी दयानंद ने पूर्ववर्ती 28 नियमों को संशोधित कर 10 नियम बनाए।

स्वामी दयानंद ने 'सत्यार्थ प्रकाश' के एकादश समुल्लास में लिखा है ''जो उन्नति करना चाहो तो 'आर्य समाज' के साथ मिलकर उसके उद्देश्यानुसार आचरण करना स्वीकार कीजिए। नहीं तो कुछ हाथ न लगेगा।''

आर्य समाज से देश में नवीन चेतना का संचार हुआ। स्वदेशाभिमान, स्वधर्म, स्वराज, स्वदेशी व स्वभाषा की भावना प्रबल हुई। स्वतंत्रता संग्राम में आर्य

MV July 2018 final for printing:Layout 1 6/22/2018 11:33 AM Page 51

समाज का जो योगदान रहा वह विस्तृत अध्ययन के लिए एक स्वतंत्र विषय है। आर्य समाज के महत्त्व को रेखांकित करते हुए स्वामी विवेकानंद ने कहा ''कबीर, नानक, चैतन्य, ब्रह्म समाज और आर्य समाज का यदि जन्म न होता तो आज भारत में हिंदुओं की अपेक्षा मुसलमान और ईसाइयों की संख्या निसंदेह बहुत अधिक होती।''[46]

गोरक्षा व गोशालाएँ

भारतीय आर्य परंपरा व अर्थ व्यवस्था में गाय का विशिष्ट स्थान है, परंतु परकीय राज में हो रही गोहत्या से स्वामी दयानंद बहुत विचलित थे। उन्होंने गोरक्षा के लिए अभियान चलाया। गाय के महत्त्व को प्रतिपादित करते हुए 'गो करुणानिधि' पुस्तक की रचना की। 'गोकृष्यादि रक्षिणि सभा' नाम से गोशालाओं की स्थापना कराई और गोरक्षा के लिए ब्रिटेन की महारानी विक्टोरिया को ज्ञापन देने के लिए 1881 में हस्ताक्षर अभियान चलाया।[47] यही नहीं उन्होंने समय-समय पर अंग्रेज अधिकारियों से मिलकर देश में गोहत्या पर प्रतिबंध लगाने की भी माँग की। गोशालाओं से देश में जन चेतना का जिस प्रकार संचार हुआ उसके संबंध में प्रसिद्ध गांधीवादी चिंतक धर्मपाल ने कहा '' इन गोशालाओं के माध्यम से सन् 1880 से 1894 ई. तक देश भर में, विशेषतः उत्तर और मध्य भारत में प्रबल गोरक्षा आंदोलन उठा। गोरक्षिणी सभाओं की व्यापक श्रृंखला स्थापित हुई।[48]

सत्यार्थ प्रकाश

समाज में स्वदेशाभिमान जाग्रत करने के लिए स्वामी दयानंद ने 1874 में सत्यार्थ प्रकाश की रचना की और वेदों के भाष्य लिखे। सत्यार्थ प्रकाश में उन्होंने स्वदेश और स्वराज के महत्त्व का प्रतिपादन किया और समाज व्यवस्था, राजधर्म व स्वायत्त शासन के संबंध में वैदिक परंपराओं का उल्लेख करते हुए विस्तार से लिखा।

स्वधर्म और स्वराज के प्रति चेतना जाग्रत करने के अभियान में उन्होंने अपने प्राणों तक की चिंता नहीं की। उन्होंने कहा ''मैं यह काम किसी स्वार्थ से तो कर ही नहीं रहा हूँ। इसके कारण मैं अनेक प्रकार के कष्ट सहता हूँ, गालियाँ और ईंट-पत्थर खाता हूँ, विष तक भी मुझे दिया जा चुका है, परंतु जाति और धर्म के लिए मैं सब कुछ सहन कर रहा हूँ।''[49]

स्वामी दयानंद ने अपमान और कष्ट सह कर भी जिस प्रकार से स्वदेशाभिमान जाग्रत कर जन-जन में चेतना जगाई उससे असंख्य स्वतंत्रता सेनानियों ने स्वातंत्र्य आंदोलन में बढ़-चढ़ कर भाग लिया और देश को स्वतंत्र कराने के लिए अपने प्राणों को न्यौछावर कर दिया।

गोशालाओं के माध्यम से सन् 1880 से 1894 ई. तक देश भर में, विशेषतः उत्तर और मध्य भारत में प्रबल गोरक्षा आंदोलन उठा। गोरक्षिणी सभाओं की व्यापक श्रृंखला स्थापित हुई। - धर्मपाल

स्वराज के प्रति जन चेतना जाग्रत करने के स्वामी दयानंद के महत्त्व का आकलन इसी बात से किया जा सकता है कि जिस 'स्वराज' शब्द का प्रयोग दादा भाई नौरोजी ने 1906 में किया, लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक ने 1916 में 'स्वराज मेरा जन्मसिद्ध अधिकार है' का नारा लगाया और कांग्रेस के लाहौर अधिवेशन में 1929 में 'पूर्ण स्वराज' का अपना लक्ष्य घोषित किया उस स्वराज शब्द का उद्घोष सबसे पहले स्वामी दयानंद ने 1874 में 'सत्यार्थ प्रकाश' में किया था।

सत्यार्थ प्रकाश (1874), आर्य समाज (1875) और गोशालाओं की स्थापना (1880) से देश में जो राजनीतिक व सामाजिक चेतना जाग्रत हुई और अंग्रेजों के खिलाफ असंतोष भड़कने लगा, उससे अंग्रेज सरकार परेशान हो गई थी और 1885 तक आते-आते उसने यह

MV July 2018 final for printing:Layout 1 6/22/2018 11:33 AM Page 52

महसूस किया कि इस असंतोष को नियंत्रित करने की दृष्टि से सामाजिक विषयों पर चर्चा के लिए भारत के प्रमुख राजनीतिज्ञ साल में एक बार मिलें। 'कांग्रेस का इतिहास' में डॉ. बलदेव राज गुप्त लिखते हैं ''कांग्रेस का जन्म तत्कालीन वायसराय लॉर्ड डफरिन की इच्छा से हुआ। वह चाहते थे कि भारत के प्रधान राजनीतिज्ञ सामाजिक विषयों पर चर्चा करने के लिए साल में एक बार मिलें, एक दूसरे को समझें, आपस में मित्रता करें, इससे लाभ होगा। पर वह चाहते थे कि इसमें राजनीतिक चर्चा न की जाए।'' लॉर्ड डफरिन की प्रेरणा से ही ''ए.ओ. ह्यूम ने 1884 में पक्की धारणा बना ली थी कि भारत के प्रमुख राजनीतिज्ञ वर्ष में एक बार मिल बैठे और सामाजिक मुद्दों पर खुल कर बातचीत हो।''[50] इसी अवधारणा पर 1885 में ए.ओ.ह्यूम ने 'इंडियन नेशनल कांग्रेस' की स्थापना की। इस संबंध में आम धारणा यह है कि अंग्रेजों ने कांग्रेस का गठन एक 'सेफ्टी वाल्व' के रूप में कराया था। इस विषय में सी.डब्ल्यू. सी बनर्जी का कहना है ''ह्यूम राजनीतिक चर्चा कराने के पक्ष में अधिक नहीं थे। कांग्रेस का आधार ही था कि ब्रिटिश राज भारत में स्थायी तौर पर बना रहे।''[51]

चिंता की बात है कि समाज में विखंडन और वितंडावाद की जो स्थितियाँ स्वामी दयानंद के समय थी कुछ वैसी ही स्थितियाँ अब पुनः बन रही हैं। ऐसे में आवश्यकता इस बात की है कि स्वामी दयानंद के विचारों पर पुनः गंभीर चिंतन और मनन कर समाज में चेतना जाग्रत की जाए। जिससे स्वामी दयानंद की यह प्रार्थना सार्थक हो 'अन्य देशवासी राजा हमारे देश में कभी न हो तथा हम लोग पराधीन कभी न रहें' तथा भारत पुनः अपना समृद्ध व गौरवशाली अतीत प्राप्त करे।

अंग्रेज सरकार ने भारतीयों में पहले असंतोष को दिग्भ्रमित करने के लिए भले ही कितने ही प्रयास किए हों परंतु स्वामी दयानंद ने देश में स्वराज के प्रति जो चेतना जाग्रत की उससे अंग्रेज अपने षड्यंत्रों में सफल नहीं हो सके।

वास्तव में स्वामी दयानंद ने 1857 के स्वातंत्र्य समर को बहुत करीब से देखा और उसकी असफलता के कारणों का गंभीर व विशद् विवेचन किया। यही नहीं उन्होंने इस बात पर भी मंथन किया कि क्या कारण है कि विश्व के सर्वश्रेष्ठ वैदिक ग्रंथ और आध्यात्मिक चेतना के बावजूद भी भारत पर परकीयों का शासन संभव हो सका। उनका निष्कर्ष था की आपसी फूट, वैदिक परंपरा को भुला देने व पाखंडों के कारण भारतीय समाज छिन्न-भिन्न हुआ। उनका मानना था कि आपस की फूट के कारण ही महाभारत युद्ध के बाद भारत कभी भी अपना गौरवशाली व समृद्ध अतीत पुनः प्राप्त न कर सका। इसी समृद्ध अतीत को पुनः प्राप्त करने और परकीय शासन से आर्यावर्त्त को मुक्ति दिलाने के लिए स्वामी दयानंद आजीवन संघर्ष करते रहे।

यह चिंता की बात है कि समाज में विखंडन और वितंडावाद की जो स्थितियाँ स्वामी दयानंद के समय थी कुछ वैसी ही स्थितियाँ अब पुनः बन रही हैं। ऐसे में आवश्यकता इस बात की है कि स्वामी दयानंद के विचारों पर पुनः गंभीर चिंतन और मनन कर समाज में चेतना जाग्रत की जाए। जिससे स्वामी दयानंद की यह प्रार्थना सार्थक हो ''अन्य देशवासी राजा हमारे देश में कभी न हो तथा हम लोग पराधीन कभी न रहें,''[52] तथा भारत पुनः अपना समृद्ध व गौरवशाली अतीत प्राप्त करे।

लेखक वरिष्ठ पत्रकार हैं।

MV July 2018 final for printing:Layout 1 6/22/2018 11:33 AM Page 53

संदर्भ

1. धर्मपाल. (1988). अंग्रेजों से पहले का भारत. विदिशाः शताब्दी प्रकाशन, पृ. 12
2. धर्मपाल. (2016). भारत का स्वधर्म. बीकानेरः वाग्देवी प्रकाशन, पृ. 57
3. वही पृ. 58
4. वही पृ. 58
5. कुमारप्पा, जे.सी. (1948). हिंदुस्तान और ब्रिटेन का आर्थिक लेन-देन. अहमदाबादः नवजीवन प्रकाशन मंदिर, पृ. 12
6. वही पृ. 3
7. वही पृ. 12-13
8. वही पृ 13
9. कुरुक्षेत्र(2006). 1857 का स्वातंत्र्य समरः एक पुनरावलोकन. पृ.13
10. मित्तल, डॉ. सतीश चंद्र. (2009). 1857: वनवासी नेतृत्व. मुंबईः भारतीय इतिहास संकलन समिति, कोंकण प्रांत, पृ. 13
11. धर्मपाल. (1988). अंग्रेजों से पहले का भारत. विदिशाः शताब्दी प्रकाशन, पृ. 8
12. धर्मपाल. (2016). भारत का स्वधर्म. बीकानेरः वाग्देवी प्रकाशन, पृ. 73
13. मित्तल, डॉ. सतीश चंद्र. (2009). 1857: वनवासी नेतृत्व. मुंबईः भारतीय इतिहास संकलन समिति, कोंकण प्रांत, पृ. 7 व 116-117
14. धर्मपाल. (1988). अंग्रेजों से पहले का भारत. विदिशाः शताब्दी प्रकाशन, पृ. 26
15. वही पृ. 26
16. वही पृ. 34
17. भट्टाचार्य, सच्चिदानंद. (संपादक). (1967). भारतीय इतिहास कोश. लखनऊः हिंदी समिति
18. मित्तल, डॉ. सतीश चंद्र. (2009). 1857: वनवासी नेतृत्व. मुंबईः भारतीय इतिहास संकलन समिति, कोंकण प्रांत, पृ. 18
19. वही, पृ. 16-17
20. वही, पृ. 7-8
21. वही, पृ. 9-10
22. वही, पृ. 12-14
23. धर्मपाल. (2016). भारत का स्वधर्म. बीकानेरः वाग्देवी प्रकाशन, पृ. 17
24. आटो ग्राफिकल स्केच, पृ. 16 (उद्धरण भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में आर्य समाज की देन (पृ. 1). कलकत्ताः आर्य समाज. कलकत्ता
25. धर्मपाल. (2016). भारत का स्वधर्म. बीकानेरः वाग्देवी प्रकाशन, पृ. 22
26. दयानंद, स्वामी. सत्यार्थ प्रकाश, अष्टम् समुल्लास.
27. वही
28. वही, दशम समुल्लास
29. वही, एकादश समुल्लास
30. गांधी, महात्मा. (2001). हिंद स्वराज. अहमदाबादः नवजीवन प्रकाशन मंदिर. पृ. 22
31. वही पृ. 24-25
32. दयानंद, स्वामी. उपदेश मंजरी. पृ.13
33. भारद्वाज, डॉ. रमेश. (2010). नव जागरण और स्वतंत्रता आंदोलन में उपनिषदों की भूमिका. दिल्लीः विद्या निधि प्रकाशन. पृ. 108-109
34. दयानंद, स्वामी.सत्यार्थ प्रकाश, एकादश समुल्लास.
35. वही
36. वही, अष्टम् समुल्लास
37. भट्टाचार्य, सच्चिदानंद. (संपादक). (1967). भारतीय इतिहास कोश. लखनऊः हिंदी समिति. पृ. 70-71
38. अग्रवाल, डॉ रवींद्र. ब्रजभाषा के रीतिकालीन ऐतिहासिक चरित काव्य- पृ.54, (अप्रकाशित शोध प्रबंध)
39. सत्यानंद, स्वामी. (1964). श्रीमद्दयानंद प्रकाश. नई दिल्लीः वेद प्रचारक मंडल, पृ. 510-511
40. ऋग्वेद, 10.191.4
41. भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में आर्य समाज की देन, पृ. 142
42. सत्यानंद, स्वामी. (1964). श्रीमद्दयानंद प्रकाश. नई दिल्लीः वेद प्रचारक मंडल, पृ. 306
43. वही
44. सिंह, प्रो. रत्न. (2009). आर्य समाज के दस नियम. दिल्लीः विजय कुमार गोविंदराय हासानंद. पृ. 3
45. सत्यानंद, स्वामी. (1964). श्रीमद्दयानंद प्रकाश. नई दिल्लीः वेद प्रचारक मंडल, पृ 289
46. विवेकानंद, स्वामी. वर्तमान भारत. नागपुरः रामकृष्ण मठ, 15वां संस्करण. पृ. 19
47. सत्यानंद, स्वामी. (1964). श्रीमद्दयानंद प्रकाश. नई दिल्लीः वेद प्रचारक मंडल, पृ. 498-501
48. धर्मपाल. (2016). भारत का स्वधर्म. बीकानेरः वाग्देवी प्रकाशन, पृ. 25
49. लोहखंडे, चंद्र शेखर. (2018). मैं दयानंद बोल रहा हूँ. दिल्ली : विजय कुमार गोविंदराय हासानंद. पृ. 55
50. गुप्त, डॉ. बलदेव राज. (1988). कांग्रेस का इतिहास. वाराणसीः हिंदी प्रचाकर संस्थान. पृ. 8
51. वही
52. दयानंद,स्वामी. आर्याभिविनय

MV July 2018 final for printing:Layout 1 6/22/2018 11:33 AM Page 54

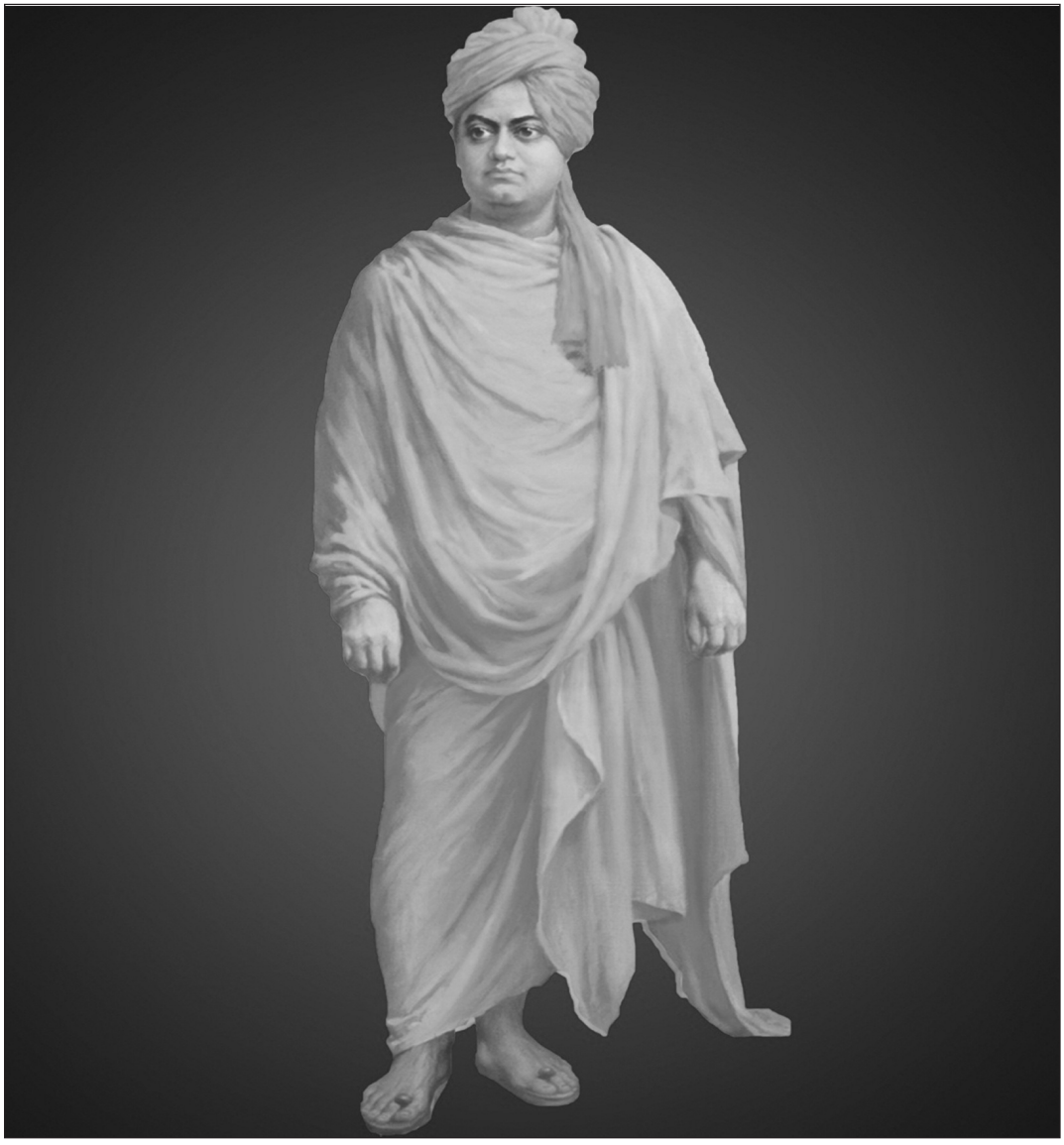

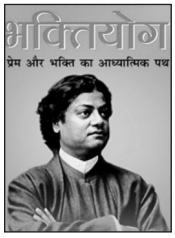

ईश्वर के प्रति श्रद्धा व प्रेम का योग भक्तियोग है। इस खोज का आरंभ मध्य और अंत प्रेम में होता है। ईश्वर के प्रति एक क्षण का निस्पृह प्रेम भी शाश्वत मुक्ति दिलाने वाला है। भगवान के प्रति उत्कृष्ट प्रेम ही भक्ति है। जब मनुष्य इसे प्राप्त कर लेता है, तो सभी उसके प्रेम-पात्र बन जाते हैं। वह किसी से घृणा नहीं करता; वह सदा के लिए संतुष्ट हो जाता और उसे आध्यात्मिक अनुभूति होती है जिससे उसे सृष्टि के कण-कण में विराट् के दर्शन होते हैं। स्वामी विवेकानंद के शब्दों में यही निष्कपट प्रेम है, यही विशुद्ध धर्म है और यही भक्ति योग है।

MV July 2018 final for printing:Layout 1 6/22/2018 11:33 AM Page 55

डॉ. चंदन कुमारी

भक्तियोग : उच्चतर प्रेम का मार्ग

एक आध्यात्मिक विभूति जिनके दिव्य ज्ञान की आभा से भारतभूमि सहित सारी वसुधा आलोकित हो रही है, उन्हीं स्वामी विवेकानंद की एक कृति है -'भक्तियोग'। इसके पारायण से मानव समाज कई जटिल पूर्वाग्रहों से मुक्त हो सकता है। आधुनिकता के मोह-पाश में फँसे विह्वल सामाजिक प्राणी जो अपने अंतर्मन की शांति हेतु कई प्रयत्न करते हैं। लेकिन सच्चे सुख से अनभिज्ञ रहते हैं। उनकी यह दिशाहीन तलाश उनके कीमती वक्त के साथ-ही-साथ उनके उस धन को भी क्षत-विक्षत कर देती है जिसका उपयोग वे बेसहारा और लाचार लोगों के जीवन को सँवारने हेतु कर सकते थे। पर यह विचार हममें से कितनों के मस्तिष्क में आता है? जहाँ यह विचार होगा, जहाँ इस ओर प्रयत्न होगा- वहाँ अशांति की क्या बिसात! अचंभा तो तब होता है जब विराट् के प्रतीक की उपासना में लीन मनुष्य सहजता से उसके जीव रूपी साक्षात् स्वरूप की अवहेलना कर बैठता है, इतना ही नहीं वरन् अपने से भिन्न पद्धति के उपासकों के प्रति भी असहिष्णु हो जाता है। सच्चे धर्मानुयायी ऐसे तो नहीं होते! 'भक्तियोग' में भक्ति के भिन्न-भिन्न साधनों की पारदर्शी व्याख्या उपलब्ध है। इस व्याख्या का आधार ग्रंथ-ज्ञान के साथ ही स्वामी विवेकानंद की आत्मानुभूति भी है। इस आत्मानुभूति के लेखन का उद्देश्य सर्वानुभूति से जुड़ा हुआ है।

विराट् शक्ति का अस्तित्व स्वीकार करना शोभनीय है। इसे सभी स्वीकार करते हैं। 'भक्तियोग' के माध्यम से स्वामी विवेकानंद धर्म के नाम पर पनपती अंधता को मूल समेत उखाड़ फेंकना चाहते हैं। ईश्वर की सर्वोत्कृष्ट कृति मानव धर्मांधता के कुचक्र में फँस कर अपने अनमोल जीवन को व्यर्थ न कर दे, इसलिए स्वामी विवेकानंद अपनी कृति के माध्यम से अपने बंधुओं के ज्ञान-चक्षु को खोलना चाहते हैं। अतिरेकों की भाँति ही अंधेपन में भी

MV July 2018 final for printing:Layout 1 6/22/2018 11:33 AM Page 56

विनाश का बीज छिपा है जिसका प्रत्यक्ष साक्ष्य कुरुक्षेत्र का युद्ध है। मानव चाहे मतांध हो, कामांध हो, धर्मांध हो या किसी अन्य मूढ़ अंधता से ग्रसित हो– मानव की यह अंधता किसी भी दृष्टिकोण से कभी भी मान्य नहीं है। ध्यान देने योग्य तथ्य है कि– 'वही मनुष्य, जो धर्म और ईश्वर संबंधी अपने आदर्श में इतना अनुरक्त है, किसी दूसरे आदर्श को देखते ही या उस संबंध में कोई बात सुनते ही इतना खूँखार क्यों हो उठता है। इस प्रकार का प्रेम कुछ-कुछ दूसरों के हाथ से अपने स्वामी की संपत्ति की रक्षा करने वाले एक कुत्ते की सहज प्रवृत्ति

मानव अपनी विचार शक्ति के कारण ही पशुओं से श्रेष्ठ है पर न जाने क्यों वह आतुरता से विचारहीन कर्मों को अंजाम दे रहा है। मूर्तिपूजा और धार्मिक अनुष्ठानों की लोकप्रियता सर्वविदित है, इस तथ्य को जानते हुए भी भक्तियोग में आध्यात्मिक अनुभूति पर विशेष बल दिया गया है।

के समान है। पर हाँ, कुत्ते की वह सहज प्रेरणा मनुष्य की युक्ति से कहीं श्रेष्ठ है, क्योंकि वह कुत्ता कम-से-कम अपने स्वामी को शत्रु समझकर कभी भ्रमित तो नहीं होता– चाहे वह किसी भी वेश में उसके सामने क्यों न आये।' (स्वामी विवेकानंद, भक्तियोग, पृ. 4)।

मानव अपनी विचार शक्ति के कारण ही पशुओं से श्रेष्ठ है, पर न जाने क्यों वह आतुरता से विचारहीन कर्मों को अंजाम दे रहा है। मूर्तिपूजा और धार्मिक अनुष्ठानों की लोकप्रियता सर्वविदित है, इस तथ्य को जानते हुए भी भक्तियोग में आध्यात्मिक अनुभूति पर विशेष बल दिया गया है। स्वामी विवेकानंद इसे ही प्रत्यक्षानुभूति मानते हैं। यह प्रत्यक्षानुभूति समस्त तर्क-वितर्क एवं संशयों से परे होती है। मानव जीवन में इस अभीष्ट की प्राप्ति हेतु सहज, सरल, निष्पाप आत्मा ही तत्पर हो सकती है। एकांतिक साधना के साथ-ही समस्त ब्रह्मांड के लिए अपने हृदय में अपनत्व संजोने वाला व्यक्ति ही प्रत्यक्षानुभूति का सुयोग्य पात्र हो सकता है। सच्चे गुरु के अभाव में साधक की सफलता संदेहास्पद अवश्य प्रतीत होती है, परंतु यहाँ एक सरलता है– वह यह कि साधक 'विराट् शक्ति को ही अपना गुरु मान सकता है। साधक की असीम श्रद्धा के वशीभूत होकर वह विराट् शक्ति निःसंदेह उन्हें अपना शिष्यत्व प्रदान करेगी ही। एकलव्य ने भी धनुर्विद्या की प्राप्ति हेतु गुरु द्रोणाचार्य की मिट्टी की मूर्ति को अपना गुरु मानकर अभ्यास किया और सफल धनुर्धर बने। यह भी ध्यान रहना चाहिए कि सिर्फ गुरु का वेश धारण कर कोई गुरु के उत्तरदायित्व की पूर्ति नही कर सकता है और न ही शिष्य होने का दंभ भरने से कोई योग्य शिष्य हो जाता है।

स्वामी विवेकानंद कहते हैं, 'संसार तो ऐसे लोगों से भरा पड़ा है। हर एक आदमी गुरु होना चाहता है। भिखारी भी चाहता है कि वह लाखों का दान कर डाले। जैसे हास्यास्पद ये भिखारी हैं, वैसे ही ये गुरु भी। (वही, पृ. 24)। आध्यात्मिकता के बीज को अंकुरित कर सकने वाली जमीन और उसके अनुकूल आबोहवा के निर्माण का कार्य इन व्यावसायिक बुद्धि वालों के बूते से कोसों दूर है। ऐसे प्राणी अपनी भेद-बुद्धि के साथ वास्तविक धर्म से लगातार दूरी साधे रहते हैं और व्यर्थ ही मंत्रों एवं अवतारों की अवहेलना करने से बाज नहीं आते। अवतार की मनोवैज्ञानिक सत्यता को स्पष्ट करते हुए लेखक के उद्‌गार हैं, 'मान लो, भैंसों की इच्छा हुई कि भगवान की उपासना करें– तो वे अपने स्वभाव के अनुसार भगवान् को एक बड़े भैंसे के रूप में देखेंगे। यदि एक मछली भगवान् की उपासना करना चाहे, तो उसे भगवान् को एक बड़ी मछली के रूप में सोचना होगा। इसी प्रकार मनुष्य भी भगवान् को मनुष्य-रूप में ही देखता है। यह न सोचना कि ये सब विभिन्न धारणाएँ केवल विकृत कल्पनाओं से उत्पन्न हुई हैं। मनुष्य, भैंसा,

MV July 2018 final for printing:Layout 1 6/22/2018 11:33 AM Page 57

मछली– ये सब मानो भिन्न-भिन्न बर्तन हैं; ये सब बर्तन अपनी-अपनी आकृति और जल धारण-शक्ति के अनुसार ईश्वर रूपी समुद्र के पास अपने को भरने के लिए जाते हैं।' (वही, पृ. 34)।

जिस प्रकार 'ॐ' शब्द से 'विराट् शक्ति' का पूर्ण स्वरूप परिलक्षित होता है, उसी प्रकार ईश्वर के वास्तविक स्वरूप (मनुष्य से उच्चतर) की प्रत्यक्षानुभूति हेतु प्राणी को मनुष्य की भावभूमि से ऊपर उठना होगा, श्रीरामकृष्ण की भाँति परमहंस बनना होगा। भक्तियोग सभी तरह के ढकोसलों को परे हटाता है। उच्चतम सिद्धावस्था की प्राप्ति हेतु व्यर्थ के पाखंड और कर्मकांड को बढ़ावा देने की तनिक भी आवश्यकता नहीं हैं। पराभक्ति की प्राप्ति हेतु गौण भक्ति के साधन रूप में ही धार्मिक अनुष्ठान, प्रतीक-प्रतिमा उपासना, खाद्याखाद्य विचार जैसे बाह्य क्रियाकलाप आवश्यक लगते हैं। ये क्रियाएँ मानव की आंतरिक शुद्धि में सहायक मात्र हैं, इन्हें धर्म का सार भाग नहीं कहा जा सकता। अविकारी अंतर्मन में ही प्रेमस्वरूप विराट् का निवास संभव है।

सत्य, त्याग, अहिंसा और दया का भाव ग्रहण करने वाला मनुष्य ही समस्त संसार से प्रेम करने वाला हो सकता है, फिर उसका भोजन कुछ भी हो उसे पतित नहीं कहा जा सकता। '..जो थोड़े-से धन के लिए जघन्य से जघन्य कृत्य करने में भी नही हिचकता, वह तो पशु से भी गया- बीता है, फिर चाहे वह घास खाकर ही क्यों न रहता हो। जिसके हृदय में कभी भी किसी के प्रति अनिष्ट विचार तक नहीं आता, जो अपने बड़े से बड़े शत्रु की भी उन्नति पर आनंद मनाता है, वही वास्तव में भक्त है, वही योगी है और वह सबका गुरु है-फिर भले ही वह प्रतिदिन शूकर मांस ही क्यों न खाता हो।' (वही, पृ. 52)।

आध्यात्मिक अनुभूति जनित अनुराग हृदय की समस्त राग-रागिनियों को विराटोन्मुख कर देता है जिससे सृष्टि के कण-कण में विराट् का ही दर्शन होने लगता है, फिर भला प्रेम कैसे न हो! यही प्रेम विशुद्ध धर्म है। इस प्रेम के कई रूप हैं, जैसे -शांत, दास्य, सख्य, वात्सल्य, मधुर, परकीया इत्यादि-अपने हर रूप में यह हमें भयभक्ति के कुसंस्कार से मुक्त करता है। यहाँ प्रेमी भक्त प्रतिदान की आशा से परे होता है वह सिर्फ प्रेम के लिए प्रेम करता है। ऐसे प्रेमोन्मत्त भक्त जीवन की प्रतिकूल परिस्थितियों में कभी भी अपने प्रेमास्पद पर आरोप नही लगाते हैं। उन्हें सहज ही सब स्वीकार्य होता है। 'ऐसे भक्तों को यदि साँप भी काट ले, तो वे कहते हैं, 'मेरे प्रियतम का एक दूत आया था।' ऐसे ही पुरुषों को विश्वबंधुत्व की बात करने का अधिकार है। (वही, पृ.63)

उच्चतर मानवीय गुणों से संपन्न मनुष्य ही स्वार्थपरता का त्याग कर विश्व बंधुत्व की भावना को बढ़ावा दे सकता है क्योंकि कि आत्मा में स्थित परमात्मा की प्रत्यक्षानुभूति से उसकी देहात्म बुद्धि नष्ट हो जाती है और वह प्रेम की दिव्यता से भर जाता है। यही उच्चतर प्रेम का विज्ञान वस्तुतः भक्तियोग है जिसमें संपूर्ण चराचर जगत 'विराट्मय' दिखता है। इस पूर्णता को प्राप्त हुए भक्त की दशा स्वामी विवेकानंद के शब्दों में, 'तब वह पूर्णता प्राप्त भक्त अपने भगवान् को मंदिरों और गिरजों में खोजने नहीं जाता; उसके लिए तो ऐसा कोई स्थान ही नहीं, जहाँ वे न हों। वह उन्हें मंदिर के भीतर और बाहर सर्वत्र देखता है। साधु की साधुता में और दुष्ट की दुष्टता में भी वह उनके दर्शन करता है; .....वह जानता है कि वे एक सर्वशक्तिमान एवं अनिर्वाण प्रेमज्योति के रूप में उसके हृदय में नित्य दीप्तिमान हैं और सदा से वर्तमान है। (वही, पृ.85)

लेखिका रामकथा की शोधार्थी हैं।

MV July 2018 final for printing:Layout 1 6/22/2018 11:33 AM Page 58

औषधि भी हैं अन्न व दाल

'मंगल विमर्श' के अप्रैल, 2018 अंक में प्रकाशित लेख 'मेडिकल कॉलेजों ने समझा पाक विज्ञान का महत्व' में स्वास्थ्य रक्षण में मसालों की उपयोगिता का वर्णन किया गया था। दालें और अन्न भी हमारे भोजन में आधुनिक पोषण विज्ञान द्वारा वर्णित प्रोटीन और कार्बोहाइड्रेड मात्र नहीं हैं, बल्कि मौसम व शरीर की अवस्था या किन्हीं रोगों में उनके अनुरूप शरीर के लिए आवश्यक भी हैं।

1. **मसूर** – मसूर की दाल मधुर पाकी, शीतल व लघु (पचने में आसान) होती है। कफ, पित्त व रक्त विकार की नाशक है। ज्वर नाशक होने से इसे ज्वर में लेना उत्तम है। संग्राही होने से अतिसार (दस्तों) में उपयोगी है। इसका प्रयोग मल को बांधने के लिए किया जाता है।

2. **चना** – चना लघु (पचने में आसान) शीत, मधुर कषाय होता है। शरीर में तक्षता उत्पन्न करने के कारण कफ व पित्तज रोगों में उपयोगी है। मधुमेह पीड़ित लोगों को इसका सेवन करना चाहिए। सूप और आलेप (किसी भी प्रकार के लेप) के लिए उत्तम है।

3. **मूंग** – मूंग कषाय, मधुर, रुक्ष, शीत, लघु, श्लेष्म पित्त नाशक है। सूप अत्यंत उपयोगी है। ज्वर नाशक होने से ज्वर में उत्तम है। इसे सद् बलदा (जल्दी ही बल प्रदान करने वाली) कहा गया है, अतः ज्वर के बाद रोगी को जल्दी बल प्राप्त करने के लिए इसका उपयोग करना चाहिए।

4. **माष** (उड़द)- यह श्रेष्ठ वृष्य है अर्थात् शुक्राणु बनाने वाला है। वात नाशक, स्निग्ध, उष्ण, मधुर, गुरु (पचने में भारी), बल्य (बल देने वाली), मल की मात्रा बढ़ाने वाली है। उड़द की विशेषता है कि यह शीघ्र पुंसत्व को देने वाला है।

5. **राजमाष** (राजमा)- राजमाष रुचि बढ़ाने वाला अर्थात् भोजन में रुचि बढ़ाने वाला किंतु गुरु (पाचन में कठिन) होता है। यह वात वर्धक होता है। अतः किसी भी प्रकार के जोड़ों के दर्द प्रभावित लोगों को इसका सेवन नहीं करना चाहिए।.

MV July 2018 final for printing:Layout 1 6/22/2018 11:33 AM Page 59

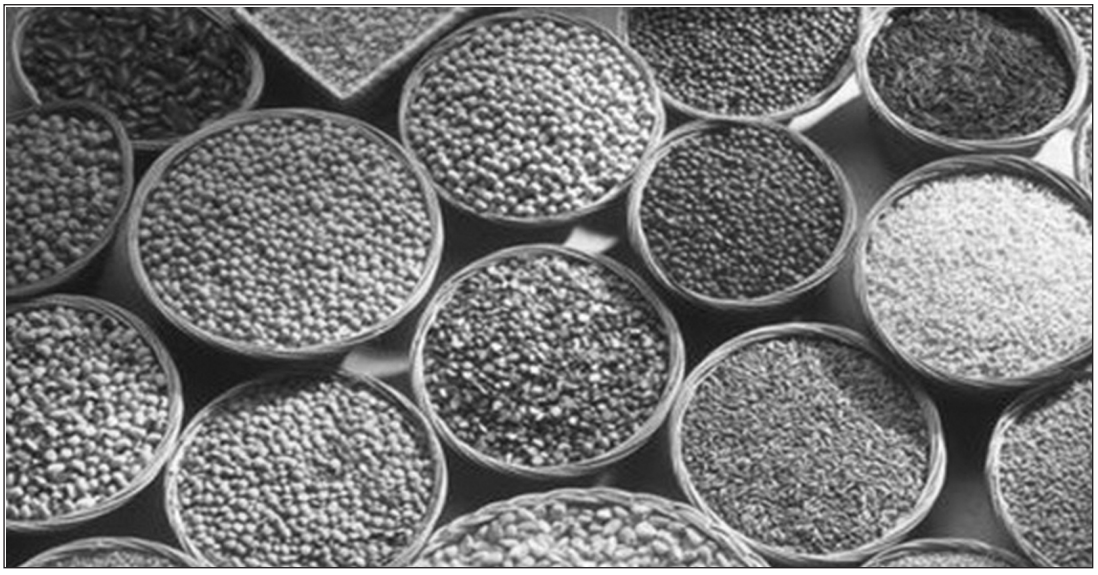

6. **कुलथी** - उष्ण, कषाय, अम्ल विपाकी। कुलथी का प्रयोग गुर्दे की पथरी, खाँसी, श्वांस, हिचकी तथा अर्श (बवासीर) में बहुत उपयोगी है।

7. **मोठ** – मधुर, शीतवीर्य है। यह रक्तपित्त (जहाँ मुँह या गुदा में रक्त आता हो) तथा ज्वर में लाभकारी है।

8. **गेहूँ** – मधुर, शीत, जीवनीय (ताकत देने वाला), बृहण (पौष्टिक), वृण्य (शुक्राणु को बढ़ाने वाला), स्थैर्यकर (शरीर के स्थिरता देने वाला) है।

9. **यव** (जौ)- रुक्ष, शीत, लघु, मधुर, वात और मल को बढ़ाने वाला (इसी कारण कब्ज के रोग में हितकर है। मल की मात्रा बढ़ने से कब्ज दूर होता है), बल्य (शरीर को बल देने वाला), कषाय रस वाला, मधुमेह व गुर्दे के रोगियों के लिए विशेष रूप से हितकर है।

10. **अरहर** - कफ-पित्त नाशक व वातवर्धक है।

11. **सेम के बीज** - वात-पित्त को बढ़ाने वाले होते हैं।

12. **गव्य घृतं** (गाय का घी)- आँखों के लिए उत्तम, ऊर्जा एवं अग्नि को बढ़ाने वाला। मधुर विपाक, शीतल। वात, पित्त व कफ को ठीक रखने वाला। मेधा, लावण्य, कांति, ओज तथा तेज वृद्धिकारक। रोगों से रक्षा कर आयु को बढ़ाने वाला, सुगंधयुक्त, रोचक एवं संपूर्ण घृतों में उत्तम तथा अधिक गुणकारी होता है।

13. **तिल तैल** – गुरु, बल व दृढ़ता देने वाला, शुक्र की वृद्धि करने वाला। मधुर, रस तथा विपाक। वात व कफ को हरने वाला, उष्णवीर्य, स्पर्श में शीत, रक्तपित्तकारक, मल व मूत्र को बाँधने वाला, गर्भाशय शोधक। कान, सिर तथा योनि की पीड़ा हरने वाला। त्वचा, केश व आँखों की रक्षा करने वाला। चोट, घाव, दाह इत्यादि में हितकर। अन्न संस्कार (छौंक लगाना) में, नाक, कान व आँखों में डालने में उपयोगी। सेंकने, व मालिश करने के लिए तिल का तैल उत्तम होता है।

सर्षय तैल (सरसों का तैल)- कटुरस, लघु, स्पर्श तथा वीर्य में उष्ण, तीक्षण, पित्त तथा रक्त की दूषित करने वाला एवं कफ, मेद, वायु, बवासीर, सिर तथा कान संबंधी रोगों में, खुजली, कुष्ठ, कृमि, श्वेतकुष्ठ तथा कृमि को नष्ट करने वाला होता है।

लेखिका प्रकाश इंस्टीट्यूट ऑफ आयुर्वेद, बुलंदशहर, उत्तर प्रदेश में प्रोफेसर हैं।

MV July 2018 final for printing:Layout 1 6/22/2018 11:33 AM Page 60

मनोगत

मान्यवर महोदय,

'मंगल विमर्श' का जुलाई, 2018 अंक आपको समर्पित है। 'मंगल विमर्श' में प्रकाशित लेखों के संबंध में समय-समय पर मिलने वाली आपकी प्रतिक्रियाएँ हमारे लिए मार्गदर्शक होती हैं। राजा राममोहन राय पुस्तकालय प्रतिष्ठान के अध्यक्ष श्री ब्रजकिशोर शर्मा जी ने अपने पत्र में लिखा है कि मंगल विमर्श हमें नियमित प्राप्त हो रहा है। यह पत्रिका अप्रतिम है। प्रत्येक अंक की सामग्री विचारणीय और पठनीय होती है और अंक संग्रहणीय। प्रभु श्रीराम के चरणों में प्रार्थना है कि वे इस पत्रिका के प्रकाशन में सहयोगी समस्त राष्ट्रप्रेमी विद्वतजनों पर निरंतर कृपादृष्टि रखें।

सोनीपत के डॉ. शिव कुमार खंडेलवाल जी ने अपने पत्र में बधाई देते हुए लिखा है कि इस अंक में डॉ. बजरंग लाल गुप्ता जी के संदर्भ में अयोजित उस कार्यक्रम को प्रकाशित किया है जिसमें 'जैन विश्व भारती' ने उन्हें 'प्रज्ञा पुरस्कार' से सम्मानित किया है। अन्यथा, मेरे अनुभव के अनुसार, अपवाद रूप से ही वे अपने संदर्भ में किसी विज्ञप्ति के लिए सहमत होते हों। संभवतः यह संपादकीय अधिकार और मंगल का ही द्योतक है। दूसरे, यह जानकर बहुत प्रसन्नता हुई कि 'मंगल विमर्श' को समाज में सांस्कृतिक चेतना व जागरूकता के प्रसार हेतु, केंद्रीय संस्कृति मंत्रालय द्वारा संचालित दिल्ली लाईब्रेरी बोर्ड द्वारा सम्मानित और पुरस्कृत किया गया है।

उन्होंने लिखा है कि पत्रिका में प्रकाशित सामग्री के विषय में यदि कहूँ तो पूर्वांकों के समान इस अंक की रचनाएँ भी साहित्यिक और सामयिक दृष्टि से बहुत महत्त्वपूर्ण हैं। इनमें भी डॉ. राम स्नेही लाल शर्मा 'यायवर' की 'साहित्य का सामर्थ्य' विशेष रूप से उल्लेखनीय है। विद्वान लेखक ने इस आलेख में साहित्य की जिस सामर्थ्य, क्षमता और उसकी अपरिमित शक्ति का चित्रण किया है वह असंदिग्ध रूप से अभेद्य है। यह भी नितांत सत्य है कि सत्यं, शिवं , सुंदरम् का व्याख्याता साहित्य और साहित्यकार अमर होता है। भले ही साहित्य

MV July 2018 final for printing:Layout 1 6/22/2018 11:33 AM Page 61

सीधे-सीधे समाज में क्रांति न करता हो, परिवर्तन न कर सकता हो तथापि मानव मन में जिस प्रेरणा को जन्म देता है एवं जिस ऊर्जा का संचार करता है, समय आने पर जब उसका स्फोट होता है तो बड़ी-बड़ी क्रांतियाँ घटित हो जाती हैं। छोटी से छोटी साहित्यिक रचना भी कभी-कभी बड़ी क्रांति की वाहक बन जाती है। कदाचित् इसीलिए कहा गया है–

सतसैया के दोहरे ज्यों नावक के तीर।
देखन में छोटे लगैं घाव करैं गंभीर।।

इस अंक के संपादकीय में जन-जन की जीवन धारा गंगा में फैलते प्रदूषण और उसकी निरंतर क्षरित होती जा रही जिस स्थिति की बात की गई है वह निश्चय ही गंभीर संकट का संकेत है। गंगा हमारी संस्कृति की परिचायक, पतित पावनी और मोक्ष दायिनी ही नहीं इससे भी अधिक वह हमारे अस्तित्व और अस्मिता की रक्षक है। अतएव सरकार के साथ-साथ हम सब का भी यह दायित्व है कि गंगा ही नहीं यमुना, कृष्णा, कावेरी, नर्मदा आदि देश की सभी नदियों को प्रदूषित होने से बचाएँ और निरंतर जल के घटते स्तर को देखते हुए उसके अपव्यय को रोकें। इसी संदर्भ में इस अंक में श्री शंकर लाल माहेश्वरी जी ने अपने लेख 'जल है तो कल है' में जल के महत्त्व पर विस्तार से विचार किया है।

लाल आतंकवाद के उन्मूलन में समाज की भूमिका

'मंगल सृष्टि' द्वारा आयोजित की जाने वाले गोष्ठियों के क्रम में *'लाल आतंक के उन्मूलन में समाज की भूमिका'* विषय पर 6 मई, 2018, रविवार को आयोजित गोष्ठी में वरिष्ठ पत्रकार डॉ. प्रमोद कुमार ने छत्तीसगढ़ के नक्सल प्रभावित क्षेत्रों की चार दिन की अपनी यात्रा के अनुभवों को साझा करते हुए बताया कि नक्सलियों द्वारा छत्तीसगढ़,उड़ीसा, आंध्र प्रदेश व महाराष्ट्र के वनवासी क्षेत्र को पूरी दुनिया से अलग-थलग रखने के लिए रची गयी तमाम साजिशों और आए दिन दिखने वाले खूनी मंजरों के बावजूद अब बस्तर ही नहीं पूरा नक्सल प्रभावित क्षेत्र बदल रहा है। जिन भोले-भाले वनवासियों के हाथों में बंदूकें थमाकर नक्सली इस पूरे क्षेत्र में करीब चार दशक से खूनी खेल खेलते रहे आज वही वनवासी उन्हें नकार रहे हैं। नक्सलवाद की चूलें हिलाने में सलवा जुडुम के योगदान को नकारा नहीं जा सकता। जिन लोगों ने उस दौरान बंदूकें चलाने का प्रशिक्षण लेकर नक्सलवादियों को चुनौती दी थी आज वे पूरे बस्तर में एक बड़े परिवर्तन का माध्यम बने हैं। इससे शेष समाज को संबल मिला और इन प्रयासों के बाद कई सौ गाँवों में विकास की किरणें पहुँची हैं।

आज बस्तर की सड़कों को देखें तो साफ दिखाई देता है कि बेहतरीन सड़कें इस क्षेत्र में हैं। हालांकि इन सड़कों को बनाने के लिए सुरक्षा बलों के कई सौ जवानों तथा मजदूरों को अपनी जानें गंवानी पड़ी। अंततः पूरा बस्तर आज सड़कों से जुड़ गया है। इसी के साथ बिजली, स्कूल और स्वास्थ्य सेवाएँ भी अधिकतर गाँवों में पहुँच गई हैं। इस बदलाव के लिए सामाजिक संगठनों और सरकारी स्तर पर लीक से हटकर प्रयोग किए गए।

सलवा जुडुम से जुड़े चौथी-पाँचवी कक्षा पास युवाओं तक को छत्तीसगढ़ पुलिस की बस्तर बटालियन में भर्ती किया गया। गाँव में स्कूल नहीं चल सके तो 'एजुकेशन हब' जैसे प्रयोग करके एक ही स्थान पर स्कूल, कॉलेज, पॉलिटेक्नीक, आईटीआई जैसी सुविधाएँ प्रदान की गयीं। नक्सलवाद की चपेट में रहे दंतेवाड़ा, सुकमा, नारायणपुर और बीजापुर जैसे इलाकों में ऐसे सफल प्रयोग हुए हैं। बीजापुर में जहाँ प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने गत 14 अप्रैल को 'आयुष्मान भारत ' योजना का उद्घाटन किया उसी स्थान पर बना एक 'डेवलपमेंट हब' सभी का ध्यान आकर्षित कर रहा था। वहाँ एक ही स्थान पर पटवारी का दफ्तर, आंगनवाड़ी, बैंक, स्वास्थ्य

MV July 2018 final for printing:Layout 1 6/22/2018 11:33 AM Page 62

केंद्र, डाकखाना, राशन की दुकान व अन्य सभी जरूरी कार्यालय खोल दिए गए ताकि एक ही समय में गाँव से आने वाला व्यक्ति कम से कम समय में अपना सभी जरूरी काम एक ही स्थान पर कर ले और इसके लिए उसे इधर-उधर न भटकना पड़े। जिस बीजापुर क्षेत्र के लोगों को कभी सामान्य बुखार की दवा लेने के लिए भी करीब 160 किमी चलकर जगदलपुर जाना पड़ता था, आज उसी बीजापुर में तमाम आधुनिक सुविधाओं से युक्त सुपर स्पेशलिटी सरकारी अस्पताल है जिसमें देश के अनेक राज्यों से आए अनुभवी डाक्टर सेवारत हैं। इसके लिए उन डाक्टरों को कुछ विशेष सुविधाएँ प्रदान की गई हैं।

बीजापुर के इस बदलाव में वहाँ के वर्तमान जिलाधीश अयाज तंबोली की बड़ी भूमिका है, जो लीक से हटकर कार्य करने में विश्वास करते हैं। इससे पूर्व बस्तर के आईजी रहे कल्लूरी की लीक से हटकर काम करने की शैली ने भी नक्सलियों की चूलें इतनी हिला दी कि कल्लूरी को वहाँ से हटवाने के लिए नक्सलवादियों ने अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर अभियान चलाया था। हालांकि कल्लूरी को वहाँ से हटाने पर राज्य सरकार भी नागरिकों के निशाने पर आ गई, जिसका संतोषजनक जवाब लोगों को आज तक नहीं मिला है। खैर, सरकारों की अनेक मजबूरियाँ होती हैं।

राज्य के प्रत्येक गाँव में बिजली पहुँचा दी गई है और मुख्यमंत्री की विकास यात्रा के दौरान करीब पाँच लाख स्मार्ट फोन युवाओं को बाँटे गए हैं। 'बस्तर नेट' के माध्यम से बस्तर के गाँव-गाँव में इंटरनेट की सुविधा पहले ही पहुँच चुकी है अब स्मार्ट फोन के माध्यम से बस्तर पूरी दुनिया से जुड़ गया है।

नक्सल प्रभावित रहे बस्तर के इस बदलाव में सरकार के साथ-साथ समाज की अत्यंत प्रभावी भूमिका रही है। इस क्षेत्र में अखिल भारतीय वनवासी कल्याण आश्रम ने छात्रावासों के माध्मय से 1979 में काम शुरू किया। पहला छात्रावास कोंडा गाँव में शुरू हुआ अब इस क्षेत्र में पाँच छात्रावास चल रहे हैं। इन छात्रावासों के माध्यम से भी लीक से हटकर प्रयोग किए गए। गर्मी की छुट्टियों में जब छात्र अपने-अपने गाँव जाते हैं तो उनमें से नौवीं और ऊपर की कक्षाओं में पढ़ने वाले बच्चों से अपेक्षा की जाती है कि वे अपने-अपने गाँव में जाकर खेल-कूद आदि के माध्यम से गाँव के अन्य बच्चों से बात करें और उन्हें अपनी वनवासी संस्कृति से परिचित कराएँ। इसके अलावा छात्रावास में पढ़ने वाले किसी बच्चे के संपर्क का व्यक्ति जगदलपुर किसी अस्पताल में आता है तो कल्याण आश्रम के कार्यकर्ता उसके इलाज में उसकी पूरी मदद करते हैं। आज बस्तर के विभिन्न इलाकों में कई स्वावलंबन केंद्र तथा 22 संस्कार केंद्र भी चल रहे हैं। इन स्वावलंबन केंद्रों में वनवासी युवकों को विभिन्न व्यवसायों में प्रशिक्षित किया जाता है जिससे वे जीवन में आत्म निर्भर बन सकें।

वनवासी कल्याण आश्रम के साथ ही बस्तर में 'रामकृष्ण मिशन' के द्वारा भी 1975 में स्कूल व छात्रावास शुरू किया गया, जिसने समाज के मानस परिवर्तन में बड़ी भूमिका निभायी। समाज का मानस बदलने में जिस किसी संगठन की सबसे अधिक सक्रियता आज भी है वह है 'गायत्री परिवार', जिसकी बस्तर के गाँव-गाँव में शाखाएँ हैं और वे श्रद्धा जागरण का अत्यंत प्रभावी कार्य कर रहे हैं। उनके कार्यकर्ताओं की टीम में ज्यादातर स्थानीय वनवासी ही हैं और उन्होंने गाँव-गाँव में सात्विक जीवन जीने के लिए लोगों को प्रेरित किया है, जिससे प्रभावित होकर लाखों लोगों ने मांसाहार, मदिरापान तथा अन्य व्यसन त्यागकर सात्विक जीवन जीना शुरू किया है।

इस क्षेत्र में नक्सलवादियों और चर्च का गठजोड़ जग जाहिर है। नक्सलवादी जहाँ वनवासियों को डरा -

MV July 2018 final for printing:Layout 1 6/22/2018 11:33 AM Page 63

धमका कर अपने चंगुल में फँसाते रहे वहीं चर्च उनका धर्मांतरण कर उन्हें ईसाई बनाने में जुटा था। इस कार्य के लिए उन्हें विदेशों से भी भरपूर आर्थिक मदद मिलती रही। चर्च द्वारा संचालित धर्मांतरण के षड्यंत्र की गंभीरता को समझते हुए स्थानीय धर्म गुरुओं ने इस संकट पर विचार-विमर्श किया और धर्मांतरण कर ईसाई बनने वाले लोगों से सभी प्रकार के सामाजिक संबंध तोड़ने का निर्णय किया। इसका परिणाम यह हुआ कि धर्मांतरण पर प्रभावी रूप से अंकुश लगा है। धर्मांतरण पर अंकुश लगने और वनवासियों में वनवासी कल्याण आश्रम, राम कृष्ण मिशन व गायत्री परिवार की लोकप्रियता के कारण ये तीनों संगठन और इनके कार्यकर्ता चर्च के निशाने पर रहते हैं।

समाज और सरकारी स्तर पर बस्तर में बदलाव के जो भी प्रयोग हुए हैं उनका एक सबसे अहम परिणाम यह रहा है कि उन्होंने नई पीढ़ी को नक्सलवाद के कुचक्र में फँसने से बचा लिया है। नई पीढ़ी का साथ नहीं मिलने के कारण ही नक्सली कैडर आज बिखर रहा है। जो वहाँ हैं भी वे भी बड़ी संख्या में बंदूकें छोड़कर मुख्यधारा में शामिल हो रहे हैं। पिछले दस वर्ष में कई हजार नक्सली युवाओं ने आत्मसमर्पण कर सम्मानजनक जीवन जीने का रास्ता चुना है। जैसे-जैसे ये प्रयास और मजबूत होंगे वैसे-वैसे पूरा बस्तर विकास की पटरी पर फर्राटे भरने लगेगा।

श्री मुन्ना लाल जैन ने कहा कि देश में लाल आतंकवाद को समझने के लिए यह जानना आवश्यक है कि इनकी प्रेरणा का केंद्र कहाँ है और इसको देश में पनपने के लिए कौन जिम्मेदार है। दुनिया में कम्यूनिस्टों के प्रभाव के बढ़ने की विस्तार से चर्चा करते हुए उन्होंने बताया कि मार्क्स से प्रभावित लेनिन ने सबसे पहले रूस में और उसके बाद माओत्सेतुंग ने चीन में कम्यूनिस्ट शासन स्थापित किया।

भारत के पहले प्रधानमंत्री पंडित जवाहर लाल नेहरू कम्यूनिज्म से बहुत प्रभावित थे, इसलिए उनका झुकाव सोवियत संघ और चीन के प्रति था। उन्होंने भारत में भी कम्यूनिस्ट पार्टी की जड़ें जमाने में कम्यूनिस्टों की बहुत मदद की। भारत की कम्यूनिस्ट पार्टी को सोवियत संघ और चीन से भी बहुत मदद मिलती थी। इतना ही नहीं भारत के कम्यूनिस्ट यह नारा लगाते थे कि चीन का चेयरमैन हमारा चेयरमैन है। 1962 में जब चीन ने भारत पर आक्रमण किया तब इन कम्यूनिस्टों ने चीन की सेना को 'मुक्ति सेना' बताया था।

1966 में तत्कालीन प्रधानमंत्री लाल बहादुर शास्त्री की ताशकंद (सोवियत संघ) में मृत्यु के बाद इंदिरा गांधी प्रधान मंत्री बनी। शासन में बने रहने के लिए उन्होंने कम्यूनिस्ट पार्टी का सहयोग लिया और बदले में उन्हें शिक्षा व संस्कृति आदि मामलों में हस्तक्षेप करने की खुली छूट दे दी, जिसका प्रभाव यह हुआ कि शिक्षा क्षेत्र में कम्युनिस्ट पार्टी के कार्ड होल्डर कार्यकर्ताओं का वर्चस्व हो गया। इसका जीता-जागता प्रमाण जवाहर लाल नेहरू विश्वविद्यालय में कम्यूनिस्टों के अधिपत्य के रूप में देखा जा सकता है।

कम्यूनिस्टों का लक्ष्य बंदूक के बल पर 1975 तक देश की सत्ता पर कब्जा करना था। इसी मुहिम के तहत चारु मजूमदार आदि नेताओं ने देश के पिछड़े हुए इलाकों में लोगों को लामबंद करना शुरू किया और उन्हें हथियारों का प्रशिक्षण दिया। इसकी शुरुआत पश्चिम बंगाल के नक्सलबाड़ी गाँव से हुई थी इसीलिए इस लामबंद जमात को 'नक्सलवादियों' के नाम से जाना जाता है। बिहार में लाल आंतकवादी एमसीसी के नाम से जाने जाते हैं और छत्तीसगढ़ व उड़ीसा में पीडब्ल्यूसी के नाम से। देश के अलग-अलग क्षेत्रों में इनके नाम कुछ भी हों परंतु ये मूलतः नक्सलवादी हैं और इनका लक्ष्य बंदूक के बल पर सत्ता हथियाना है। इनके संबंध श्रीलंका के

MV July 2018 final for printing:Layout 1 6/22/2018 11:33 AM Page 64

आतंकवादी संगठन लिट्टे, कश्मीर के आतंकवादी जेकेएलएफ और खालिस्तानी आतंकवादियों से भी रहे और इन्हें नक्सलवादियों ने हथियार उपलब्ध कराए व प्रशिक्षण दिया।

नक्सलवादी व्यापारियों व अधिकारियों से वसूली करते हैं, गाँवों में स्कूलों, अस्पतालों और सड़कों को नष्ट करते हैं और रेलवे स्टेशनों को बमों से उड़ाते हैं। विदेशों से इन्हें बहुत बड़ी सहायता मिलती है। मिडिया में भी इनके समर्थक महत्त्वपूर्ण पदों पर काबिज हैं। समाज में अस्थिरता पैदा करने के लिए अब ये दलित, मुस्लिम व महिलाओं के नाम पर लोगों को भ्रमित करने का काम करते हैं।

समाज के विभिन्न क्षेत्रों में फैले इन लाल आतंकवादियों के उन्मूलन में समाज की महत्त्वपूर्ण भूमिका है। आज आवश्यकता इस बात की है कि सोशल मीडिया के माध्यम से इनके दुष्प्रचार को उजागर किया जाए। वास्तव में आज समाज को वैचारिक लड़ाई लड़ने के लिए तैयार होने की जरूरत है।

मंगल विमर्श के प्रधान संपादक प्रो. ओमीश परुथी ने कहा कि हम यहाँ बैठकर नक्सल प्रभावित क्षेत्र की विकराल स्थिति का अंदाजा नहीं लगा सकते। 2006 में तत्कालीन प्रधानमंत्री डॉ. मनमोहन सिंह ने कहा था कि नक्सल प्रभावित क्षेत्रों की स्थिति कश्मीर से भी ज्यादा विकराल है। नक्सल प्रभावित अबूझमाड़ वास्तव में इतनी अबूझ है कि वहाँ अर्धसैनिक बलों का जाना भी कठिन है। नक्सली हिंसा का सहारा लेते हैं। यहाँ तक कि महिलाओं का यौन शोषण करते हैं। इन्होंने असंख्य बच्चों का जीवन बर्बाद किया है और लोगों को डरा-धमका कर बहुत धन इक्ट्ठा किया है। यह खेद की बात है कि अरुंधती राय और प्रशांत भूषण जैसे बुद्धिजीवी उनकी वकालत करते हैं। उन्होंने कहा कि यह संतोष की बात है कि समाज के सक्रिय सहयोग से नक्सलियों के उन्मूलन में सफलता मिल रही है। अब समाज में उनके प्रति सहानुभूति समाप्त होती जा रही है। उन्होंने आह्वान किया कि नक्सल प्रभावित इलाकों में वनवासी कल्याण आश्रम और अन्य संस्थाएँ जिस प्रकार समाज परिवर्तन का कार्य कर रही हैं उसके लिए हमें उनके सहयोग के लिए आगे आना चाहिए।

'मंगल सृष्टि' के सचिव श्री तिलक चानना ने कहा कि आज की चर्चा में दो पक्ष उभर कर आए हैं। एक तो देश को तोड़ने वाली ताकतें सक्रिय हैं तो दूसरी ओर समाज के सक्रिय सहयोग से सुरक्षाबल इन ताकतों के उन्मूलन में सफलता प्राप्त कर रहे हैं। यह एक लंबी लड़ाई है और जिसमें बहुत धैर्य की अवश्यकता है। इनके उन्मूलन के लिए एक ऐसा बुद्धिजीवी वर्ग तैयार करने की आवश्यकता है जो देश को तोड़ने वाली ताकतों के षड्यंत्र से समाज को जागृत करे जिससे लाल आतंकवादियों का प्रभाव समाप्त हो सके।

इस अवसर पर सर्वश्री सुभाष जिंदल, श्री नत्थी सिंह, अतुल वालिया, एन. पी. सिंह व प्रमोद कौशिक आदि ने भी अपने विचार व्यक्त किए।

स्नेहाकांक्षी
आदर्श गुप्ता
प्रबंध संपादक

सहयोगी वृंद

1. **डॉ. आर. के. गुप्ता, प्रधानाचार्य**
पीजीडीएवी कॉलेज (सांध्य)
नेहरू नगर, नई दिल्ली - 110065

2. **डॉ. आर. पी. चड्ढ़ा**
आई टी एस, मोहन नगर,
गाजियाबाद - 201007

3. **डॉ. आनंद शर्मा, सेंट्रल यूनिर्वसिटी**
डी-23, ग्रीन व्यू अपार्टमेंट सेक्टर-7,
रोहिणी, दिल्ली - 110085

4. **श्री वी. पी. गर्ग**
19 दौलत बिल्डिंग, कोलाबा,
पोस्ट ऑफिस कोलाबा, मुंबई -400005

5. **डॉ. रमेश अग्रवाल**
मैत्री अपार्टमेंट, सेक्टर-9,
रोहिणी, दिल्ली - 110085

6. **श्री उदित भारती**
460, भारती विला विलेज,
बुड्ढ़ा खेड़ा, करनाल -132001 (हरियाणा)

7. **श्री संजीव कुमार मेहता**
मकान नं. 962, सेक्टर-13,
यू. ई. करनाल -132001 (हरियाणा)

8. **श्री दिनेश खुराना**
मकान नं. 230, सेक्टर-12, पार्ट-2,
करनाल -132001 (हरियाणा)

9. **श्री संजीव कुमार**
मकान नं. 1374, सेक्टर-7,
करनाल-132001 (हरियाणा)

10. **श्री नीरज ढ़ींगरा**
मकान नं. 1655, सेक्टर-13,
यू.ई. करनाल-132001 (हरियाणा)

11. **श्री रमेश कुमार दुआ**
रिलेक्सो फुटवीयर लिमिटेड
मंगलम् पैलेस, अग्रवाल सिटी स्क्वायर
सेक्टर-3, रोहिणी, दिल्ली-110085

12. **ग्लोब कैपिटल मार्केट लिमिटेड**
609, अंसल भवन, 16 के जी मार्ग,
कनॉट प्लेस, नई दिल्ली-110 001

13. **श्री दुष्यंत कुमार गौतम**
ए-7, विवेक विहार, फेस-2,
दिल्ली - 110095

MV July 2018 final for printing:Layout 1 6/22/2018 11:34 AM Page 66

मंगल विमर्श

सदस्यता -प्रपत्र

मंगल विमर्श त्रैमासिक पत्रिका

मुख्य संरक्षक
डॉ. बजरंग लाल गुप्ता

प्रधान संपादक
ओमीश परुथी

संयुक्त संपादक
डॉ. रवींद्र अग्रवाल

प्रबंध संपादक
आदर्श गुप्ता

सदस्यता -शुल्क

10 वर्षों के लिए
₹2000 मात्र

मंगल विमर्श की..... वर्षों की सदस्यता हेतु.....

रुपये का ड्राफ्ट/चैक क्रं. ..... दिनांक.....

बैंक..... भेज रहे हैं,

कृपया..... वार्षिक सदस्य बनाने का कष्ट करें।

नाम.....

पता.....

.....

..... पिनकोड .....

फोन :..... मोबाइल:.....

इ-मेल.....

पत्रिका सदस्यता शुल्क हेतु
मंगल सृष्टि (Mangal Srushti)
के नाम चैक/ड्राफ्ट सी-84, अहिंसा विहार,
सेक्टर-9, रोहिणी, दिल्ली- 110085 पर भेजें।
फोन नं. +91-9811166215,
+91-11-27565018

इ-मेल mangalvimarsh@gmail.com **वेब साइट** www.mangalvimarsh.in